शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 15 अंक : 11 1 जून 2023

ज्येष्ठ-आषाढ़ मास, विक्रम संवत् 2080

परामर्श

के.नरहरि

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

जगदीश प्रसाद सिंघल

शिवानन्द सिन्दनकेरा

जी. लक्ष्मण

महेन्द्र कुमार

❖

सम्पादक

प्रो. शिवशरण कौशिक

❖

संपादक मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

प्रो. ओमप्रकाश पारीक

डॉ. एस.पी. सिंह

प्रो. दीनदयाल गुप्ता

भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बसंत जिंदल

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली - 110053

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-

दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

भारत के भविष्य हेतु पाठ्यपुस्तकों का पुनर्लेखन

❑ **प्रो. नारायण लाल गुप्ता**

विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों को भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास की एक जागरूक समझ विद्यार्थी में विकसित करते हुए उनके भीतर भारतीय होने के नाते गर्व की भावना पैदा करने वाला होना चाहिए। प्रायोजित विरूपणों, अर्धसत्यों, अतिशयोक्तियों, सुविधानुसार चयनित तथ्यों, अस्पष्टताओं, अति सरलीकरणों, पक्षपातों, पूर्वाग्रहों, सामान्यीकरणों, तुष्टीकरणों, एक विशेष राजनीतिक विचारधारा को पोषण करने वाले तथ्यों के प्रवर्धनों, अप्रामाणिक जानकारियों आदि से मुक्त भारतीय दृष्टि से प्रमाणिक पुस्तक लेखन की देश की आवश्यकता है।

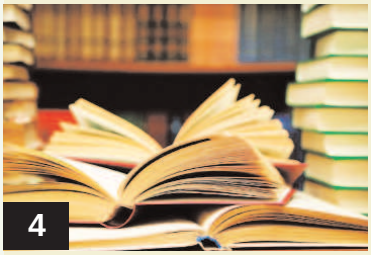

4

अनुक्रम

3.	सम्पादकीय	- प्रो. शिवशरण कौशिक
8.	इतिहास की दृष्टि से पाठ्य पुस्तकों का पुनर्लेखन	- प्रो. आलोक कु. चक्रवाल
10.	राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा	- डॉ. सुमन बाला
15.	भारत की प्राचीनतम ज्ञान परम्परा का वैशिष्ट्य	- प्रो. कमला भारद्वाज
18.	सांस्कृतिक विचारधाराओं के पाठ्यपुस्तकों में...	- डॉ. चन्द्रवीर सिंह भाटी
20.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति और पाठ्यचर्या की समग्रता	- प्रो. रिछपाल सिंह
23.	भारतीय शिक्षा के इतिहास एवं पाठ्यपुस्तकों...	- डॉ. संज्ञा त्रिपाठी
26.	सांस्कृतिक मूल्यों का विकास और इतिहास...	- डॉ. मुकेश कुमार मीणा
29.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में...	- अनामिका यादव
35.	Need to Recreate History : School ...	- Dr. T.S. Girishkumar
38.	Bharatiya (भारतीय) Perspective in...	- Prof. Suneel Kumar
42.	Enriching the Essence of Indianness...	- Dr. Abha Kathuria

Time to Teach Intelligent Design Theory

❑ **Prof. Bhagwati Prakash Sharma**

From this above premise the proponents of intelligent design theory emphatically infer that no such system could have come about through the gradual alteration of functioning precursor systems by means of random mutation and undirected Natural Selection as the standard evolutionary believers claim. Therefore, living organisms must have been created all concurrently with a directed intelligent design. To some it may be even by an intelligent designer.

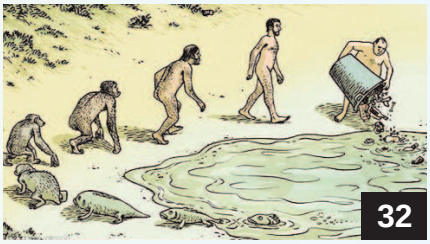

32

संपादकीय

प्रो. शिवशरण कौशिक
सम्पादक

शिक्षा का मूल उद्देश्य विद्यार्थी को व्यक्तिगत और सार्वजनिक रूप से सार्थक जीवन जीने के लिए योग्य बनाना है। शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही निरंतर इस दिशा में चिंतन करते रहते हैं। कभी-कभी शासक वर्ग द्वारा अपनी साम्राज्यवादी नीति को किसी देश की शिक्षा नीति के माध्यम से चलाकर उस देश को बौद्धिक गुलाम बनाने का काम भी विश्व-इतिहास में अनेक बार हुआ है। भारत में ब्रिटिश-राज और मैकाले शिक्षा का प्रभाव इसी क्रम में शिक्षा का माध्यम बनकर देश के पाठ्यक्रमों का भी हिस्सा रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वर्षों तक भारत की शिक्षा प्रणाली में इतिहास, समाज विज्ञान, राजनीति शास्त्र, दर्शनशास्त्र, गणित, भौतिक विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, रसायन शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र जैसे अनेक विषयों का स्वरूप कमोबेश अंग्रेजी या विदेशी मानसिकता का ही रहा। इसीलिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में पाठ्यपुस्तकों के प्रासंगिक पुनर्लेखन का विचार पुरजोर तरीके से रखा गया है ।

वस्तुत: ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज भारतीय जिज्ञासा के सदैव केंद्र में रहे हैं। यह मौलिक अन्वेषणकारी प्रवृत्ति पुन: विकसित हो, यही मूल उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति का भी है। एन.ई.पी. में प्रायोगिक व उन्नत विज्ञान के साथ समाज विज्ञान एवं मानविकी के विषयों और साहित्य, भाषा-विज्ञान, खेलकूद तथा कला के विविध विषयों के बहु-विषयक पाठ्यक्रमों के निर्माण व अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहन की बात की है; जिससे हमारे विद्यार्थियों में न केवल देश के विभिन्न प्रांतों की भाषा, कला और ज्ञान-परंपरा के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होगी; अपितु एक समरस, संगठित तथा समृद्ध भारत विकसित हो सकेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था और पाठ्यपुस्तकों में ऐसे विषयों को सम्मिलित किया जाए जिससे कि विद्यार्थियों में भारत के प्रति मौलिक दायित्वों, संवैधानिक मूल्यों और देश के प्रति अपनेपन के भाव के साथ भारतीय होने पर गर्व का भाव उत्पन्न हो।

इसी क्रम में शिक्षा नीति में कला-समन्वय (आर्ट इंटीग्रेशन) और खेल-समन्वय (स्पोर्ट्स इंटीग्रेशन) को भी उल्लेखनीय रूप से पाठ्यक्रमों की आधारभूत सामग्री के रूप में स्थान दिया गया है। इसमें विभिन्न विषयों के शिक्षण के साथ कला एवं खेल संस्कृति के अनुकूलतम अवयवों का समावेश होगा जिससे विद्यार्थियों में समूह-भाव, नागरिक कर्तव्य-भाव तथा स्वानुशासन-भाव का विकास हो सकेगा, ऐसी अपेक्षा है।

इधर कुछ वामपंथी लेखकों द्वारा कहा जा रहा है कि ''स्वतंत्रता आंदोलन की अग्रणी पंक्ति के अधिकांश नेता और स्वतंत्रता सेनानी विदेशों में पढ़े थे या फिर उस समय की अंग्रेजी सरकार द्वारा चलाई जा रही पाठ्य पुस्तकों को पढ़कर ही देशभक्त बने थे'' उनकी यह बात पूरी तरह सच है, परंतु इसका मनोविज्ञान यह था कि विदेशों में पढ़ कर पुन: स्वदेश लौटने वाले राष्ट्र भक्तों के व्यक्तित्व का निर्माण देश और विदेश में बार-बार 'पराधीन', 'गुलाम' और 'परतंत्र' जैसे निरंतर अपमानजनक शब्दों के सुनने के साथ हुआ था। पाठ्य पुस्तकों के पुनर्लेखन की विकास प्रक्रिया की आलोचना करते हुए कुछ तथाकथित वामपंथी लेखकों का तर्क यह भी है कि ''मुगल शासकों के सुशासन के कारण ही भारत के मध्यकाल में एक शक्तिशाली भक्ति-आंदोलन उदित और विकसित हुआ'' था जबकि सच्चाई यह है कि भक्ति आंदोलन मुगलों द्वारा भारतीय धर्म संस्थानों पर विशेष रूप से हिंदू धर्म संस्थानों पर किए गए विध्वंसक प्रहार के कारण जनमानस की प्रतिक्रिया थी - वामपंथी इतिहासकारों को मलिक मोहम्मद जायसी, रसखान, रहीमदास जैसे अन्य भक्त-कवियों की रचनाधर्मिता तो दिखाई देती है जो कि पूरी तरह सच है, किंतु उनको यह दिखाई नहीं देता कि इन्हीं महान कवियों द्वारा राधा-कृष्ण की भक्ति किए जाने या हिंदू लोक प्रेम कथाओं को आधार बनाकर काव्य-रचना करने के कारण इन सभी मुस्लिम कवियों को सूफी संतों में स्थान नहीं दिया जाता रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो यह भी पुरजोर रूप से प्रतिपादित किया है कि यदि मुगल भारत में नहीं आते तब भी भारत में भक्ति आंदोलन का उदय तो होना ही था क्योंकि इसका मूलाधार पुराणों में व्यक्त भगवद्भक्ति के साथ दक्षिण के जगद्गुरु शंकराचार्य और रामानुज प्रभृत आलवार संतों की भक्ति से निश्चित हुआ था जिसकी जड़ें हजारों वर्ष पुराने सनातन धर्म की ज्ञान धाराओं में छिपी हुई थी। यद्यपि वामपंथी आलोचक भी स्वतंत्रता के समय से चली आ रही अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति तथा अंग्रेजों द्वारा लिखी हुई पाठ्य पुस्तकों की आलोचना करते हुए यह मानते हैं कि ''उस समय की अंग्रेज लेखकों द्वारा लिखी गई पाठ्य पुस्तकों का भारत के 'देश प्रेम' या अन्य किसी प्रेरणास्पद भाव से कोई संबंध नहीं था'' परंतु राजनीतिक कारणों से या फिर वर्षों से पिछली सरकारों के आर्थिक-राजनीतिक संरक्षण के चलते वे विगत 60-70 वर्षों की पुस्तकों में किसी प्रकार की कमी या आपत्ति नहीं ढूँढ़ पाते। बल्कि आज किए जा रहे प्रासंगिक और आवश्यक परिवर्तनों को ही राजनीति से प्रेरित बताने पर आमादा हैं।

यह पहली बार नहीं है जब एनसीईआरटी ने पाठ्य पुस्तकों से किसी हिस्से या किसी पाठ को हटाया या उसमें बदलाव किया है। समाजशास्त्र की किताब से जातिगत भेदभाव से संबंधित सामग्री हो, या कक्षा 12 की राजनीति विज्ञान की किताब में जम्मू कश्मीर संबंधित पाठ के बदलाव की हो या फिर त्रावणकोर की महिलाओं के जातीय संघर्ष अथवा राष्ट्रवाद समेत कुछ अन्य पुस्तकों में आंशिक बदलाव पहले भी होते रहे हैं। आज पाठ्यपुस्तकों के पुनर्लेखन के केंद्र में भारत की समावेशिता का विचार है। भारतीय गणराज्य की प्राचीनता और अत्याधुनिक ज्ञान-विज्ञान के व्यावहारिक समन्वय को पाठ्य पुस्तकों में तथा शिक्षण पद्धतियों में समाहित करने का कार्य एन.ई.पी. के माध्यम से किया जा रहा है। ❑

भारत के भविष्य हेतु पाठ्यपुस्तकों का पुनर्लेखन

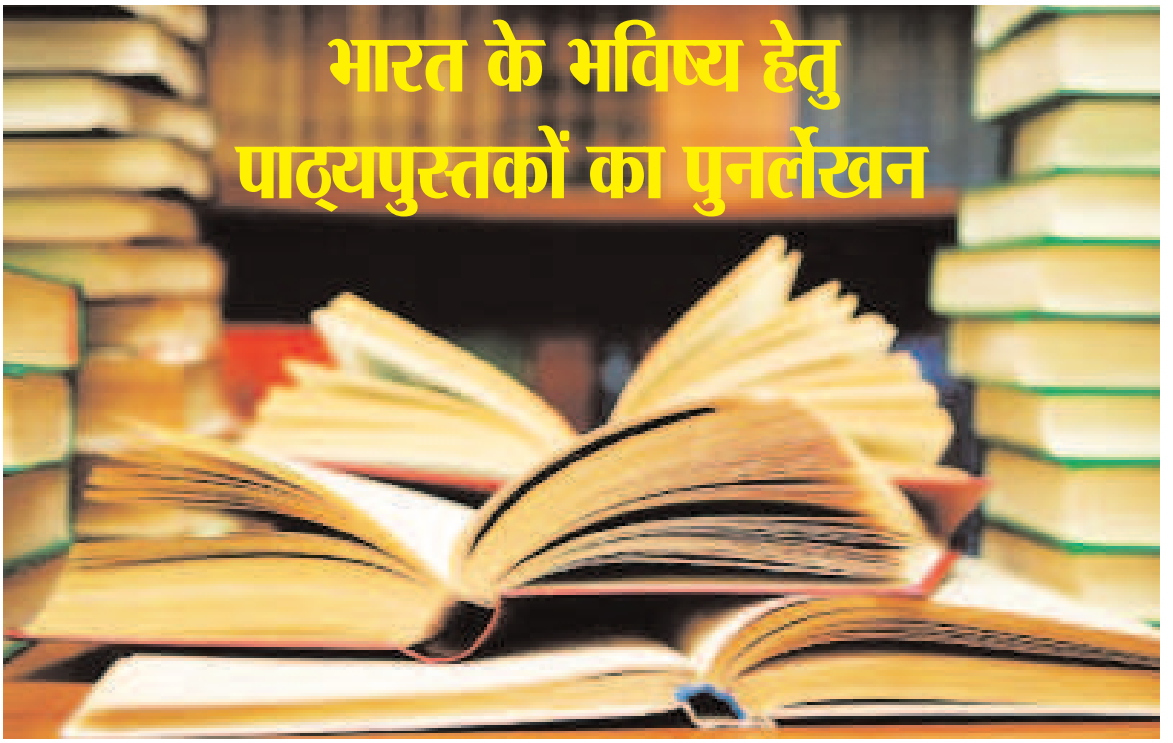

प्रो. नारायण लाल गुप्ता
प्रोफेसर भौतिक शास्त्र,
राजकीय महाविद्यालय,
किशनगढ़ (राज.)

लगभग चार दशक पुरानी शिक्षा नीति और दो दशक पुरानी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के प्रावधानों के अनुसार लिखी गई एनसीईआरटी पुस्तकों को लंबे समय से देशभर के विद्यालयों में पढ़ा और पढ़ाया जा रहा है। पुस्तकों की सामग्री के चयन और प्रस्तुतीकरण पर भी पिछले वर्षों में काफी प्रश्न उठाए गए हैं। पिछले 20 सालों में दुनिया के ज्ञान परिदृश्य और सीखने की विधाओं में भी बड़ी मात्रा में परिवर्तन हुए हैं। इस पूरे परिदृश्य में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और उसके अनुरूप नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का प्री-ड्राफ्ट देश के सामने व्यापक चर्चा के बाद आए हैं। कालक्रम के इस बिंदु पर पाठ्यपुस्तकों का पुनर्लेखन देश के भविष्य के लिए एक आवश्यक कर्म और धर्म बनकर प्रस्तुत हुआ है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और पाठ्य पुस्तकों का पुनर्लेखन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कहती है कि तेजी से बदलते रोजगार परिदृश्य और वैश्विक पारिस्थितिकी तंत्र के साथ, यह तेजी से महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है कि बच्चे न केवल जो सिखाया जा रहा है वह सीखें, बल्कि सतत सीखते रहने की कला भी सीखें। अत: शिक्षा में विषय वस्तु को कम करते हुए इस पर ध्यान देने की अधिक जरूरत है कि विद्यार्थी तार्किक और रचनात्मक रूप से सोचना और समस्याओं को हल करना सीखें, विविध विषयों के बीच अंतर्संबंध को समझें, तथा अपने ज्ञान को बदलती हुई और नवीन परिस्थितियों में उपयोग कर पाएँ। इस परिदृश्य में पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु, उसका प्रस्तुतीकरण और शिक्षण शास्त्र को अधिक अनुभवात्मक, समग्र, एकीकृत, खोज-उन्मुख, शिक्षार्थी-केंद्रित, चर्चा-आधारित, लचीला और आनंददायक बनाने के लिए विकसित किया जाना जरूरी है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का विजन है कि विद्यार्थियों में भारतीय होने का गर्व केवल विचार में ही नहीं बल्कि व्यवहार, बुद्धि और कार्यों के साथ ही ज्ञान, कौशल, मूल्यों और सोच में भी होना चाहिए। नीति का मानना है कि युवाओं को भारत के बारे में और इसकी विविध सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी आवश्यकताओं सहित यहाँ की अद्वितीय कला, भाषा और ज्ञान परंपराओं के बारे में ज्ञानवान बनाना; राष्ट्रीय गौरव, आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, परस्पर सहयोग और एकता के साथ भारत को सतत ऊंचाइयों की ओर बढ़ने की दृष्टि से अति आवश्यक है। नीति के अनुसार पाठ्यचर्या में प्राचीन भारत के ज्ञान और आधुनिक भारत में इसके योगदान, इसकी सफलताओं और

विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों को भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास की एक जागरूक समझ विद्यार्थी में विकसित करते हुए उनके भीतर भारतीय होने के नाते गर्व की भावना पैदा करने वाला होना चाहिए। प्रायोजित विरूपणों, अर्धसत्यों, अतिशयोक्तियों, सुविधानुसार चयनित तथ्यों, अस्पष्टताओं, अति सरलीकरणों, पक्षपातों, पूर्वाग्रहों, सामान्यीकरणों, तुष्टीकरणों, एक विशेष राजनीतिक विचारधारा को पोषण करने वाले तथ्यों के प्रवर्धनों, अप्रामाणिक जानकारियों आदि से मुक्त भारतीय दृष्टि से प्रमाणिक पुस्तक लेखन की देश की आवश्यकता है।

चुनौतियों के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के संबंध में भारत की भविष्य की आकांक्षाओं की स्पष्ट समझ शामिल होगी। दुर्भाग्य से वर्तमान पुस्तकों में भारत केंद्रित ज्ञान और गौरव का जबरदस्त अभाव दिखाई देता है।

शिक्षा नीति का मानना है कि सभी पाठ्यपुस्तकों में राष्ट्रीय स्तर पर महत्त्वपूर्ण मानी जाने वाली आवश्यक मूल सामग्री (चर्चा, विश्लेषण, उदाहरण और अनुप्रयोगों के साथ) शामिल की जानी चाहिए, लेकिन साथ ही स्थानीय संदर्भों और आवश्यकताओं के अनुसार वांछित बारीकियों और पूरक सामग्री को भी शामिल करना चाहिए। यह महत्त्वपूर्ण प्रावधान भी पाठ्य पुस्तकों में अपेक्षित परिवर्तन को इंगित करता है।

शिक्षा नीति यह भी दर्शाती है कि प्रत्येक विषय के मानक शिक्षाशास्त्र के रूप में सभी चरणों में अनुभवात्मक शिक्षा को अपनाया जाएगा, जिसमें हैंड्स-ऑन लर्निंग, कला-एकीकृत और खेल-एकीकृत शिक्षा, कहानी-आधारित शिक्षाशास्त्र तथा विभिन्न विषयों के बीच संबंधों की खोज शामिल होगी। इस हेतु भी पाठ्यपुस्तकों का संपूर्ण पुनरीक्षण आवश्यक हो जाता है।

पाठ्य पुस्तकों में बदलाव का प्रायोजित पूर्व-विरोध

नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा अभी अंतिम रूप में नहीं आई है। पाठ्यचर्या रूपरेखा आने के बाद ही पुस्तकों के लेखन की विधिवत दिशा तय होगी लेकिन उसके पूर्व विमर्श के रूप में ही एक समूह ने प्रायोजित विरोध प्रारंभ कर दिया। पिछले सत्र में एनसीईआरटी की किताबों में कतिपय संशोधन या विलोपन किए गए। यह बदलाव अचानक नहीं किए गए थे इनकी नींव वर्ष पूर्व कोरोना काल में ही पड़ गई थी जब महामारी के प्रकोप से विद्यार्थियों के अध्ययन में उत्पन्न हुई समस्याओं को दूर करने तथा अनावश्यक बोझ को कम करने के लिए विषयवस्तु को कम किया गया। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों का एक अनुक्रम भी था। पिछले सत्र में जो बदलाव किए गए उसके प्रमुख कारण एक ही कक्षा के विभिन्न विषयों के बीच सामग्री का अतिव्यापन, एक ही विषय में निम्न या उच्च कक्षा में समान विषयवस्तु, कक्षा के अनुरूप कठिनाई के स्तर की असमानता, वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता आदि थे।

एनसीईआरटी की जिन पुस्तकों को लेकर विवाद किया गया उसका कारण यथास्थिति बनाए रखना और लेखन में एक पक्ष द्वारा प्रस्तुत तथ्यों और विषयवस्तु को ही अंतिम मानने की मानसिकता अधिक दिखाई देती है क्योंकि उन्हें लगता है कि उसके बिना विद्यार्थियों में अपेक्षित सामाजिक-ऐतिहासिक बोध नहीं हो सकता।

पाठ्यपुस्तकों में भारतीय अस्मिता विरोधी एजेंडा

स्वतंत्रता के बाद देश के पास अवसर था एक ऐसा शिक्षा तंत्र विकसित करने का जो भारतीय शिक्षा के आदर्शों के अनुकूल हो तथा अपने सही इतिहास की जानकारी देकर अंग्रेजों द्वारा रोपित हीन भावनाओं को दूर करने वाला हो? और भारतीय समाज की युगानुकूल सर्वांगीण उन्नति में सहायक हो। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा हुआ नहीं एक विशेष नजरिए से, जो औपनिवेशिक सोच एवं वामपंथी विचार से प्रभावित था, इसी क्रम में पुस्तकों विशेष रूप से विद्यालयीन पाठ्य पुस्तकों को लिखा गया। परिणामस्वरूप जो पीढ़ियाँ इस तंत्र से निकली उनमें अपने इतिहास के प्रति हीनताबोध एवं परकीय श्रेष्ठता के प्रति आकर्षण बना रहा।

वर्तमान में विद्यालयों में पढ़ाई जा रही एनसीईआरटी की इतिहास एवं सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों को देखें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि भारतीय अस्मिता को खंडित करने के सुनियोजित वैचारिक प्रयास पुस्तक लेखन में किए गए हैं। विद्यार्थियों में अपने देश, संस्कृति और पूर्वजों के प्रति घृणा और हीन भावना के बीज बोए गए हैं तथा उनके मस्तिष्क में आपसी संदेह और वर्ग संघर्ष की भावनाओं को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया है। विद्यार्थियों के मस्तिष्क को युद्ध क्षेत्र बनाकर रचा गया यह एक ऐसा युद्ध है जिसमें अर्धसत्य, झूठ और चयनात्मक तथ्य आदि सबसे अधिक मारक शस्त्रों के रूप में काम करते हैं।

एनसीईआरटी की पाठ्य पुस्तकें, जो प्रतिवर्ष लाखों विद्यार्थियों द्वारा पढ़ी और अंतस्थ की जाती हैं, उच्चतम अकादमिक गुणवत्ता और ईमानदारी पर आधारित होने के बजाए एक विशेष

वैचारिक प्रोपेगेंडा को प्रसारित करती हुई दिखाई देती हैं। भिन्न-भिन्न तरह की प्रोपेगेंडा तकनीकों; सफेद झूठ, अति सरलीकरण, सामान्यीकरण, अतिरंजना, अर्धसत्य, जानबूझकर अस्पष्टता, चयनित प्रस्तुतीकरण, अपील टू अथॉरिटी, लेबलिंग आदि चालाकियों का खुलकर प्रयोग किया गया है। विद्यार्थी इन पुस्तकों को क्रमशः पढ़ते-पढ़ते अपने अतीत, संस्कृति और सभ्यता के बारे में थोपी गई राय बनाते हुए बड़ा होता है।

वामपंथी प्रोपेगेंडा का सबसे बड़ा शिकार इतिहास की पाठ्यपुस्तकें हुई हैं। पुस्तकों में प्रायः भारत की प्राचीन सामाजिक संरचना और शास्त्रों को आदिम, शोषक, स्त्री विरोधी, प्रतिगामी और अमानवीय बताने का प्रयास किया गया है। भारतीय विरासत के इस चित्रण के विपरीत विदेशी आक्रमणकारियों एवं उनके पंथों और पूजा पद्धतियों को, बिना ईमानदारी से तथ्यों का विश्लेषण किए, श्रेष्ठ बताने का प्रयत्न किया गया है। चयनित रूप से भारतीय समाज की कमियों को प्रवर्धित कर प्रस्तुत किया गया है जबकि विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों और कमियों पर पर्दा डाला गया है ।

राजनीतिक प्राथमिकताओं के अतिरिक्त पुस्तकों में दिल्ली का वर्चस्व दिखाई देता है देश के बाकी हिस्सों के इतिहास के साथ न्याय नहीं किया गया है। देश केवल राज्य, राजधानी और उस पर आरूढ़ सुलतानों-सत्ताधीशों एवं चंद चेहरों तक सीमित नहीं होता। उसमें उसकी भूमि, नदी, पर्वत, वन, उपवन और उन सबसे अधिक सर्व साधारण जन, उनके संघर्ष, सुख-दुःख आदि सम्मिलित होते हैं। परंतु जन-गण-मन की बात तो दूर, हमारी पाठ्य-पुस्तकों में मौर्य, गुप्त एवं मराठा साम्राज्य जैसे कतिपय अपवादों को छोड़कर शेष सभी भारतीय, मसलन - चोल, चालुक्य, पाल, प्रतिहार, पल्लव, परमार, मैत्रक, राष्ट्रकूट, वाकाटक, कार्कोट, कलिंग, काकतीय, सातवाहन, विजयनगर, मैसूर के ओडेयर, असम के अहोम, नगा, सिख आदि तमाम प्रभावशाली राज्यों व राजवंशों की चर्चा लगभग नगण्य है, जबकि इनके सुदीर्घ शासन-काल में अनेकानेक साधनसंपन्न-सुनियोजित नगर बसाए गए, लंबी-चौड़ी सड़कें बनवाई गई, सुविख्यात शिक्षण-केंद्रों की स्थापना की गई, विश्व के सांस्कृतिक धरोहरों में सम्मिलित होने लायक किलों-मठों-मंदिरों आदि के निर्माण कराए गए। क्या ऐसी सांस्कृतिक धरोहरों की जानकारी युवा पीढ़ी को नहीं दी जानी चाहिए?

पब्लिक पॉलिसी रिसर्च सेंटर के निदेशक सुमीत भसीन एवं उनके सहयोगियों द्वारा प्रस्तुत शोध, जिसका शीर्षक है ''भारत के अतीत की विकृतियाँ और गलतियाँ : इतिहास की पाठ्यपुस्तकें और इनमें परिवर्तन की आवश्यकता'', ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों ने जानबूझकर भारत में मुगल शासकों के योगदान को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया है। एनसीईआरटी की इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का विस्तार से विश्लेषण करने पर, इस शोध थिंक टैंक ने खुलासा किया है कि पुस्तकों में जहाँ सम्राट अकबर का 97 बार उल्लेख है, शाहजहाँ, औरंगज़ेब और जहाँगीर में से प्रत्येक के 30 बार उल्लेख हैं, वहीं छत्रपति शिवाजी का केवल 8 बार उल्लेख किया गया है तथा राणा साँगा और महाराणा प्रताप को तो लगभग नजरअंदाज कर दिया गया है। शोधकर्ताओं के अनुसार, एनसीईआरटी और केरल की पाठ्यपुस्तकों ने इब्न बतूता जैसे इतिवृत्तकारों पर अधिक जोर दिया है वहीं चाणक्य, बोधायन, भास्कराचार्य, आर्यभट्ट, स्वामी दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद के कार्यों की तुलनात्मक रूप से उपेक्षा की है।

राष्ट्रीय गौरव से परिपूर्ण वैश्विक नागरिक बनाने में सक्षम हो पाठ्यपुस्तकें।

विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों को भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास की एक जागरूक समझ विद्यार्थी में विकसित करते हुए उनके भीतर भारतीय

होने के नाते गर्व की भावना पैदा करने वाला होना चाहिए। प्रायोजित विरूपणों, अर्धसत्यों, अतिशयोक्तियों, सुविधानुसार चयनित तथ्यों, अस्पष्टताओं, अति सरलीकरणों, पक्षपातों, पूर्वाग्रहों, सामान्यीकरणों, तुष्टीकरणों, एक विशेष राजनीतिक विचारधारा को पोषण करने वाले तथ्यों के प्रवर्धनों, अप्रामाणिक जानकारियों आदि से मुक्त भारतीय दृष्टि से प्रामाणिक पुस्तक लेखन देश की आवश्यकता है।

राष्ट्र की एकता और अखंडता को मजबूत करने के लिए देश के विभिन्न जातीय समूहों और क्षेत्रों की सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं, उनके इतिहास और योगदान को सही परिप्रेक्ष्य में पुस्तकों में शामिल किया जाना चाहिए। भारत के स्वतंत्रता संग्राम को कुछ क्षेत्रों और व्यक्तियों तक सीमित नहीं रखते हुए पूरब से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक के विभिन्न हिस्सों में हुई घटनाओं तथा वहाँ के लोगों द्वारा किए गए आंदोलनों और बलिदानों से विद्यार्थी को समग्र रूप से परिचित कराने के लिए पाठ्यपुस्तकों में समुचित बदलाव किया जाना चाहिए। शिक्षा तभी प्रासंगिक और सार्थक हो सकती है जबकि इसे विद्यार्थियों के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ा जाए। इस हेतु भारत के सभी क्षेत्रों के महापुरुषों के विचारों को पाठ्यपुस्तकों में संतुलित मात्रा में सम्मिलित किया जाना चाहिए। पुस्तकों में भारत की प्राचीन सांस्कृतिक एकता को पुष्ट करने वाले तथ्यों को प्रमुखता से दर्शाया जाना चाहिए। इनमें भारतीय भूभाग में शासन की कला, न्याय करने की शैली, युद्ध के तरीके कृषि और कृषि भूमि का रखरखाव, संपर्क और संवाद की भाषा के रूप में संस्कृत का उपयोग आदि तथ्य महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य देशों के योगदान के साथ-साथ

भारत के योगदान को भी स्पष्ट रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए। योग एवं भारतीय चिकित्सा पद्धतियों, जिसे आज दुनिया भर में मान्यता प्राप्त है, का भी पाठ्यक्रम में समुचित रूप से समावेश होना चाहिए। इतिहास लेखन में पुरातत्त्व विज्ञान, अनुवांशिकी, जलवायु विज्ञान आदि के माध्यम जो नए तथ्य सामने आए हैं उसके आधार पर मौजूदा परिकल्पनाओं को नए सबूतों के साथ परीक्षण करते हुए पुनर्लेखन भी किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी भारत की स्वदेशी ज्ञान प्रणाली को स्थानीय समाज और समूह, जो इस ज्ञान के पारंपरिक भंडार हैं, के माध्यम से सुरक्षित करने के लिए शिक्षा पाठ्यक्रम में बदलाव की बात कही है। पाठ्यपुस्तकों में ऐसे स्थानीय ज्ञान से संबंधित प्रयोगों को, विशेष रूप से गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, कृषि, इंजीनियरिंग, भाषा विज्ञान, साहित्य, खेल, शासन, राजनीति, पर्यावरण संरक्षण आदि में समुचित स्थान मिलना चाहिए। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि स्वदेशी ज्ञान प्रणाली और आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों के मध्य अंतर्संबंध बताने वाले प्रमाणों एवं विश्लेषणों को भी विद्यार्थियों को बताया जाए ताकि भारतीय गौरव बोध के साथ साथ जीवन के प्रति उसकी एकीकृत दृष्टि विकसित हो सके।

पाठ्यपुस्तकों में 21वीं सदी के बहुविषयक कौशल की आवश्यकता के अनुरूप पाठ्यक्रम के किसी बिंदु की अन्य विषय क्षेत्रों से अंतर्संबंध को भी ध्यान रखा जाना चाहिए अन्यथा सत्य की समग्रता के स्थान पर खंड-खंड और दोहराव भरा चिंतन विषयवस्तु को अनावश्यक रूप से बोझिल और अर्थहीन बनाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लक्ष्यों के अनुरूप भारतीय होने में गर्व विकसित करने वाली एवं 21वीं सदी की चुनौतियों से निपटने में सक्षम कौशल युक्त पीढ़ी के निर्माण हेतु पाठ्यपुस्तकों की विषय वस्तु के चुनाव, प्रस्तुतीकरण एवं स्थानीय संदर्भों के समावेश का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसी तकनीकों के उभार के मध्य मानवीय बुद्धि और कौशल की गरिमा को बनाए रखने के लिए समुचित शिक्षण शास्त्र हेतु सहायक एवं भारतीय आत्मसम्मान को जगाने वाली पाठ्यपुस्तकें ही एक समर्थ विकसित भारत के भविष्य की गारंटी हो सकती है। ❑

भारतीत इतिहास में आज भी कई ऐसे सवाल हैं जिसको लेकर इतिहासकार एकमत नहीं है। आर्यों के मूल निवास स्थान को लेकर डिबेट एवं 1857 की क्रांति को लेकर इतिहासकार अलग अलग तर्क देते हैं वि.डी. सावरकर ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा है जबकि ब्रिटिश इतिहासकारों ने सैनिक विद्रोह कहा है।

इतिहास की दृष्टि से पाठ्य पुस्तकों का पुनर्लेखन

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल
कुलपति, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

इतिहासकारों पर कमोवेश विचारधाराओं से प्रभावित होने का आरोप निरंतर लगता रहा है। क्योंकि आमतौर पर इतिहासकार का उसके सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश से निरंतर वैचारिक संवाद होता रहता है। ई.एच. कार महोदय ने अपनी पुस्तक (ह्वाट इज हिस्ट्री) में बताया है कि तथ्यों की विवेचना इतिहासकार की वैचारिकता पर निर्भर होती है। जे.ए. राबिन्स महोदय का मत है कि ''इतिहासकार संकलित ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं तथ्यों को अपने युग की परिस्थितियों और आवश्यकता के अनुसार प्रस्तुत करता है।'' एडवर्ड मेयर ने लिखा है कि ''इतिहास लेखन में समसामयिक सामाजिक आवश्यकता की प्रधानता रहती है। पी. गार्डिनर ने भी कहा है कि ''एक ही ऐतिहासिक तथ्य की उपयोगिता और अनुपयोगिता विभिन्न युगों में बदलती रहती है क्योंकि मानव जीवन की रुचियाँ और उसमें निहित स्वार्थों का स्वरूप सदैव परिवर्तित होता रहता है।'' सामान्यतया इतिहास लेखन मे इतिहासकारों पर विचारधाराओं का प्रभाव पड़ता है। आकशाट महोदय की मान्यता है कि इतिहासकार का पूर्वग्रह से ग्रसित होना स्वाभाविक है। वाल्श महोदय ने भी लिखा है कि ''इतिहासकार के लिए अपनी रचना में से व्यक्तिगत पूर्वग्रहों को निकालना उतना ही असम्भव है जितना उसका अपने आपको अपनी त्वचा से बाहर निकालना।''

ई.एच. कार महोदय इतिहासकार की समानता एक मछली पकड़ने वाले के रूप में करते हुये यह बताते हैं कि मछली पकड़ने वाला उसी प्रकार का जाल तालाब में डालता है जिस प्रकार की मछली उसे पकड़नी होती है। आशय यह कि इस बात की प्रबल संभावना है कि भारतीय इतिहास लेखन के दौरान यूरोपीय इतिहासकार समकालीन परिस्थिति से प्रभावित होकर या औपनिवेशिक हित को प्राथमिकता देने के लिए इतिहास लेखन के दौरान अपनी रुचि या औपनिवेशिक हित के अनुसार तथ्यो का संग्रह एवं विवेचना पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर किया होगा।

कालिंगवुड सम्पूर्ण इतिहास को विचारों का इतिहास मानते हैं। उनके अनुसार इतिहासकार प्रमुख नहीं बल्कि विचार प्रमुख होते हैं। इतिहास प्राचीन विचारों का पुन:प्रदर्शन करता है। मनुष्य पहले विचार करता है तत्पश्चात् उन्हीं विचारों को लिखित रूप देता है। परिस्थितियाँ तथा वातावरण इतिहासकारों के विचारों को प्रभावित करते हैं। इतिहास की विवेचना समय के साथ हर युग में बदलती है और एक इतिहासकार के वर्णन दूसरे इतिहासकार के वर्णन से अलग हो सकते हैं। देशकाल एवं परिस्थितियों के अनुसार इतिहास की प्रकृति भी बदल सकती है। इतिहासकार जो है वह अपने तत्कालीन वातावरण से बहुत हद तक प्रभावित होता है। एक समकालीन इतिहासकार ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन अपने दृष्टिकोण से करता है और दूसरा व्यक्ति उसका वर्णन अपने अनुसार करता है।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों का यह मानना है कि भारतीय इतिहास लेखन मे भारतीय अस्मिता की अवहेलना की गयी है, यह अतिशयोक्ति नहीं है। इतिहास लेखन पर विचारधारा, देशकाल, परिस्थितियों एवं इतिहासकार के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि का कमोवेश प्रभाव

पड़ता है। इसलिए इसमें दो राय नहीं कि भारतीय इतिहास को साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने औपनिवेशिक हित में इतिहास लिखे हों। इसी संदर्भ में मार्क्सवादी इतिहास लेखन की बात करें तो तर्क के आईने में भारतीय अस्मिता की अवहेलना करने मे पीछे नहीं रहे। निश्चित रूप से इतिहास पुनर्लेखन की जरूरत है ताकि भारत अपने वास्तविक अतीत से परिचित हो और अपने देश के गौरवशाली इतिहास से अपने भविष्य का संवाद कर भारत को विश्वगुरु बनने का मार्ग प्रसस्त करे।

इतिहासकार अतीत का वर्णन किसी विशेष दृष्टिकोण, अवधारणा, संस्कार, व्यक्तिगत ईर्ष्या अथवा भ्रान्ति के सन्दर्भ में प्रस्तुत कर सकता है जो, पूर्णतया निष्पक्ष नहीं हो सकता है। इस पक्षपातपूर्ण वर्णन के कारण ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को प्रमाणित करना विद्वानों के मध्य विवादास्पद बना हुआ है। विचारधारा दृष्टिकोण, धारणा तथा विचारों की व्यवस्था होती है। इतिहास में अतीत वर्तमान तथा भविष्य सभी का समावेश होता है। वैचारिक दृष्टिकोण का दायरा मानवीय सामाजिक मूल्यांकन और राजनीतिक निर्णयों, आर्थिक संबंधों, नैतिक मापदंडों एवं धार्मिक आस्था के सौंदर्य पर मूल्यांकन तथा दार्शनिक विचारों से संबंध रखता है। इतिहास लेखन को विचारधाराएँ निरंतर प्रभावित करती रहती हैं। इतिहास लेखन की प्रमुख विचारधाराओं (दृष्टिकोणों) की बात करें तो साम्राज्यवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा, उपाश्रयी विचारधारा, प्राच्यवादी विचारधारा एवं राष्ट्रवादी विचारधारा इत्यादि प्रमुख है।

साम्राज्यवादी इतिहासकारों की बात करें तो मैक्स मूलर ने आर्यों के मूल निवास को लेकर एक बहस शुरू की और बताया कि आर्य मध्य एशिया से आए। इस डिबेट के पीछे भारत में चल रहे स्वदेशी बनाम विदेशी विचारधारा को परिवर्तित करना था।

1905 से चले आ रहे स्वदेशी आंदोलन के आलोक में विदेशियों के प्रति भारत में बढ़ रहे रोश को कम करने के लिए हड़प्पा सभ्यता के तथ्यों को जानबूझकर तोड़ा मरोड़ा गया और हड़प्पन वासी को मूल नागरिक बताकर आर्यों को विदेशी बताने का प्रयास किया गया। आर्यों को लेकर अभी तक कोई एक निष्कर्ष निकाल पाना संभव नहीं हुआ है। इस दुविधा से स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने तथ्यों के साथ छेड़छाड़ की होगी। बाद के अध्ययनों से पता चला कि आर्यन विदेशी हैं यह भ्रामक संवाद है जिसके माध्यम से साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने के लिए गढ़ा था। साम्राज्यवाद इतिहास लेखन में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की आलोचना करने के साथ साथ अपने उपनिवेश को वैध बनाने के लिए एवं सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करने के लिए भारतीय इतिहास को अपने हित में पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर व्याख्या की हैं। ईसाई धर्म को सभ्यता से जोड़ना, गोरा रंग को सभ्यता से जोड़ना इत्यादि। इतिहास कालखंडों को धर्म आधारित एकांगी विवेचना की कि प्राचीन काल हिंदुओं से जुड़ा है एवं मध्यकाल ईस्लाम से जुड़ा है जबकि औपनिवेशिक काल को ईसाई से न जोड़कर उसे आधुनिक काल से जोड़ना इत्यादि। डार्विनवाद का सिद्धान्त भी इसलिए बढ़ा-चढ़ा के प्रस्तुत किए गए, ताकि स्वयं को योग्य बता सकें।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर जैसे विचारक भारतीय इतिहास लेखन के दौरान एकांकी दृष्टिकोण अपनाने का आरोप हैं। जैसे रोमिला थापर कहती हैं कि मंदिर तोड़ने की परंपरा मुस्लिम आक्रमणकारियों में ही नहीं बल्कि भारतीय हिंदू राजाओं में भी थी, जबकि इसका कोई उदाहरण पेश नहीं करती है। मार्क्सवादी इतिहास लेखन भौतिकतावादी व्याख्या पर निर्भर है। इसलिए यह भारतीय अस्मिता, भारतीय संस्कृति, भारतीय विश्वास की आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करता है यहाँ तक की आर्य संस्कृति को ऐतिहासिक महत्त्व के रूप में कोई विशेष महत्त्व नहीं देता है, जबकि ईस्लामिक इतिहास लेखन परंपरा को नजरअंदाज करता है जहाँ एक तरफ हिंदू संस्कृति की तीखी आलोचना करते हुए तर्कों को प्राथमिकता देता है वहीं दूसरी तरफ ईस्लामिक इतिहास लेखन जेहाद, धर्मांधता को नजरअंदाज करते हुए परोक्ष रूप से उसे स्वीकृति प्रदान करता है। इस तरह इतिहास लेखन का दोहरा चरित्र रखने वाली विचारधारा भारतीय इतिहास के प्रति कैसे न्याय कर सकती है? अन्य विचारधाराओं की भी कमोबेश ऐसी स्थिति देखने को मिलती है कि वह भारतीय अस्मिता, भारतीय संस्कृति, भारतीय ज्ञान परंपरा एवं भारतीय पुरातन व्यवस्था के प्रति आलोचनात्मक रवैया अपनाते हैं। अपने हिसाब से तथ्यों को प्राथमिकता देते हैं और तोड़ मरोड़ कर विवेचना करते हैं तथा तर्क भी अपनी विचारधारा के अनुरूप देते हैं। ऐसे में भारतीय इतिहास के साथ ये विचारधाराए न्याय नहीं कर सकती है वह अपने दृष्टिकोण और एजेंडे के साथ तथ्यों की विवेचना करती है।

भारतीत इतिहास में आज भी कई ऐसे सवाल हैं जिसको लेकर इतिहासकार एकमत नहीं है। आर्यों के मूल निवास स्थान को लेकर डिबेट एवं 1857 की क्रांति को लेकर इतिहासकार अलग अलग तर्क देते हैं वि.डी. सावरकर ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा है जबकि ब्रिटिश इतिहासकारों ने सैनिक विद्रोह कहा है। देश के विभाजन को लेकर डिबेट, भारतीय धर्मग्रंथों की वस्तुनिष्ठता, ज्ञानवापी को लेकर विवाद, रामसेतु डिबेट जैसे अनगिनत मुद्दे हैं जिनका इतिहास के पुनर्लेखन के द्वारा ही सत्य सामने आएगा। लिहाजा वर्तमान समय में भारतीय इतिहास लेखन में हुई त्रुटियों को दूर करने की आवश्यकता है। ऐसे में भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन होना नितांत आवश्यक है। ❑

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा

डॉ. सुमन बाला

सह आचार्य,
हरिभाउ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय,
हटूंडी, अजमेर (राज.)

हमारे देश में आजादी के पश्चात शिक्षा में सुधार के लिए शिक्षा आयोग और शिक्षा नीतियाँ बनाई गई। इन शिक्षा नीतियों पर आधारित पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार की गई। 1952-53 में माध्यमिक शिक्षा आयोग और 1964-66 में शिक्षा आयोग ने राष्ट्रीय विकास के लिए अपनी अनुशंसाएँ दी। हमारे देश में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में बनी और उसके ऊपर आधारित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 1975 में एनसीईआरटी द्वारा बनाई गई। 1976 में संविधान संशोधन किया गया जिसमें शिक्षा का उत्तरदायित्व समवर्ती सूची में शामिल किया गया। इससे पहले शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रांतीय सरकारों के पास था और केंद्र सरकार केवल नीतिगत निर्देश उसमें दे सकती थी। इस प्रकार 1986 में पहली बार राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने स्कूली पाठ्यचर्या के मूल में सर्वमान्य तत्त्व निहित होने की सिफारिश दी और इसके आधार पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा विकसित करना और समय-समय पर उसकी समीक्षा करने का उत्तरदायित्व एनसीईआरटी को दिया। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर आधारित पाठ्यचर्या की रूपरेखा 1988 में बनी। 1993 में इस राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की समीक्षा में यशपाल समिति ने ''शिक्षा बिना बोझ के'' की अनुशंसा की और इसकी पालना के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000 में विद्यालय शिक्षा के लिए तैयार की गई। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 कि अनुपालना में विद्यालय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा -1988, 2000 और 2005 में प्रस्तुत की गई। इसके पश्चात राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आई और इसकी अनुपालना में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023 का प्री ड्राफ्ट प्रस्तुत किया गया है। हमारे देश में अब तक 3 राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ आ चुकी हैं जो 1968,1986 और 2020 में दी गई हैं। इन तीन शिक्षा नीतियों की अनुपालना में अब तक 5 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है जिसमें 1975, 1988, 2000, 2005 और 2023 की पाठ्यचर्या का प्री ड्राफ्ट है।

किसी भी देश की स्कूल की पाठ्यचर्या उसके संविधान की भांति शिक्षा की आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है। ''भारत विभिन्न संस्कृतियों वाला देश है जो अनेक प्रादेशिक और स्थानीय संस्कृतियों से मिलकर बना है। लोगों के धार्मिक, विश्वास, जीवन शैली और सामाजिक संबंधों की समझ एक दूसरे से बहुत अलग है। सभी समुदायों को सह अस्तित्व के साथ समान रूप से समृद्ध होने का अधिकार है और शिक्षा व्यवस्था को भी हमारे समाज में निहित इस सांस्कृतिक विविधता के अनुरूप होना चाहिए। अपनी सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय अस्मिता को सुदृढ़ करने के लिए पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए कि वह युवा पीढ़ी को इसके लिए सक्षम बना सके कि वह नई प्राथमिकताओं के बदलते सामाजिक संदर्भ में उभरते दृष्टिकोण के परिपेक्ष्य में अतीत का पुनर्मूल्यांकन पुनर्व्याख्या कर पाए (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या

की रूपरेखा 2000)।'' शिक्षा प्रणाली और शैक्षिक संरचना के अंतर्गत पाठ्यचर्या निर्माण की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। पाठ्यचर्या नवीनीकरण और निर्माण एक सतत जारी रहने वाली प्रक्रिया है और राष्ट्र के तेजी से आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि एक पाठ्यचर्या में शिक्षार्थी की आवश्यकताओं, समाजगत की अपेक्षाओं, सामुदायिक आकांक्षाओं और अंतरराष्ट्रीय स्तर से समानता का अनिवार्य रूप से समावेश होना चाहिए तभी वह पाठ्यचर्या प्रभावी कही जा सकती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आधार पर राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा होगी और राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा पर आधारित पाठ्यचर्या का निर्माण होगा। पाठ्यचर्या के आधार पर पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाएगा और पाठ्यक्रम निर्धारण के पश्चात उस पर आधारित पाठ्यपुस्तकें लिखी जाएँगी। पाठ्यपुस्तकों से संबंधित शिक्षण सहायक सामग्री प्रस्तुत की जाएगी और इन सब के फलस्वरुप विद्यार्थियों के सीखने के प्रतिफल प्राप्त होंगे।

विद्यालय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000 में कहा गया है कि किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली की रचना उसकी अपने ही दार्शनिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराओं के सुदृढ़ धरातल पर होनी चाहिए। उसमें देश की आवश्यकता और आकांक्षाओं की झलक मिलनी चाहिए। इसमें पाठ्यचर्या रूपरेखा के स्वदेशी पन की अनुशंसा पर बल दिया गया जिसकी जड़ें भारतीय यथार्थ और भारत की सामाजिक संस्कृति में निहित हो। भारत की समृद्धि और सांस्कृतिक विरासत और विश्व सभ्यता के लिए भारतीय सभ्यता के योगदान के प्रति चेतना का भी दृढ़ता पूर्वक उल्लेख किया गया है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना से युक्त गहरी राष्ट्रभावना एवं देशभक्ति की अनुभूति भी छात्र छात्राओं में पुष्ट हो। सभी संस्कृतियों की ग्रहण शीलता, सबके प्रति सहिष्णुता और सम्मान के मूल्य पर आधारित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा होनी चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा क्या पढ़ाया जाना चाहिए ? कैसे पढ़ाया जाना चाहिए? क्यों पढ़ाया जाना चाहिए आदि शिक्षा संबंधी प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करती हैं। अब तक राष्ट्र की 5 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का विवरण निम्नलिखित प्रकार से है-

1. दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा -1975

इस 10 वर्षीय स्कूल की पाठ्यक्रम की रूपरेखा के अनुसार साम्राज्यवादी, सामंतवादी शिक्षा प्रणाली के अवशेषों को मिटाकर आधुनिकीकरण की ओर बढ़ते जन समाज की नई आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं माँगों के अनुरूप नई शिक्षा प्रणाली का विकास किया जाना चाहिए इस उद्देश्य को लेकर स्वतंत्र भारत की पहली पाठ्यचर्या रूपरेखा बनाई गई। इस पाठ्यचर्या की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थी - स्वीकृत सिद्धांतों और मूल्यों की रूपरेखा के अंतर्गत लचीलापन और गतिशीलता, पाठ्यक्रम जन जीवन की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप हो, विज्ञान और गणित उत्पादन एवं तकनीक दृष्टिकोण के लिए हो, कार्यानुभव सीखने के स्रोत के रूप में हो, सामाजिक न्याय, जनतांत्रिक मूल्यों, राष्ट्रीय एकता की चेतना की भावना हो, त्रिभाषा फार्मूला, कलात्मक अनुभव और अभिव्यक्ति, शारीरिक शिक्षा, चरित्र निर्माण और मानव मूल्य, सीखने पर बल, स्कूल छोड़ देने वाले विद्यार्थियों का बहुस्तरीय प्रवेश, उप स्तरीय सेमेस्टर प्रणाली लागू करना, उप स्तरीय पाठ्यक्रम की इकाइयाँ निर्धारित करना, मूलभूत पाठ्यक्रम और उससे आमंत्रण, मूल्यांकन, पाठ्य पुस्तकें और सहायक और अतिरिक्त सामग्री विकास और अनुसंधान को संयोजित करना जैसी प्रमुख सिफारिशें इस रूपरेखा ने प्रस्तुत की।

इस रूपरेखा में सामान्य शिक्षा के स्तर अनुसार उद्देश्य निर्धारित किए गए जिसमें प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य साक्षरता, अंकज्ञान, तंत्रज्ञान के साथ हाथ से कार्य करना, स्वच्छता, राष्ट्रीय भावना, सहकारिता और अभिव्यक्ति क्षमता आदि थे। इसके अतिरिक्त मिडिल स्तर की शिक्षा के उद्देश्य और माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य अलग-अलग प्रस्तुत किए गए। विषय अनुसार शिक्षा उद्देश्य और विषय वस्तु के अंतर्गत पाठ्य विषयों में विज्ञान, गणित, कार्यानुभव, सामाजिक विज्ञान, भाषाएँ, कला, संगीत और अन्य सौंदर्यात्मक गतिविधियाँ, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा स्कूल के 10 वर्षों तक के लिए प्रस्तावित की गई। स्कूली कार्यक्षेत्र और समय विभाजन में कक्षा 1 और 2, 3-5, 6-8, 9-10 की योजना बनाई गई जिसमें 240 कार्य दिवस निर्धारित किए गए और जिसमें 220 दिन पढ़ाई और 20 दिन के लिए समाज सेवा के लिए कैंप इत्यादि का प्रावधान किया गया।

पाठ्यचर्या की रूपरेखा में शिक्षण विधि और शिक्षण विषय के कुछ सुझाव दिए गए जिसमें कक्षा के अंदर शिक्षण स्थितियाँ उत्पन्न करना, अध्यापक को उदाहरण के रूप में अपने आपको करना, शिक्षक सलाहकार और प्रस्तुत प्रस्तोता की भूमिका, शिक्षण सूत्रों के मूल तत्त्व को शिक्षण विधि में समायोजित करना, आदि कुछ पक्षों को इसमें प्रस्तुत किया गया। शैक्षिक सहायक सामग्री के रूप में पाठ्य पुस्तकें, सामान्य संदर्भ सामग्री जिसमें विश्वकोश, शब्दकोश, गजेटियर, एटलस, पुस्तिकाएँ और सरकारी प्रकाशन इत्यादि शामिल हैं, के अलावा उच्च स्तर की पुस्तकें, अध्यापक संदर्शिका, अध्यापक संस्करण, पाठ्यक्रम मार्गदर्शन कार्य पुस्तिकाएँ, आयोजित शिक्षण सामग्री और दृश्य श्रव्य साधनों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया गया। मूल्यांकन और पश्च पोषण के लिए विश्वसनीय, ठोस प्रमाण आधारित, लिखित, प्रायोगिक, मौखिक परीक्षाओं, निरीक्षण स्तरीकरण आदि

विभिन्न तरीकों और साधनों से कई बार होने का सुझाव दिया गया। तुरंत पश्च पोषण को प्राथमिक स्तर पर लचीला और अविरल होना चाहिए साथ ही मूल्यांकन नियमित होना चाहिए और उसका रिकॉर्ड होना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के कार्यान्वयन की आवश्यकताएँ और दायित्व के बारे में भी कुछ अनुशंसा की गई जिसमें कार्य के लिए प्रशासन राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर होना चाहिए, कार्य के क्षेत्र अनुसंधान और विकास, सेवा कालीन और सेवा पूर्व शिक्षा का प्रशिक्षण, और प्रसार संबंधी सूचना संग्रह और वितरण कार्य आदि के बारे में कहा गया। स्कूलों के दायित्व में विद्यालयों का वातावरण और सुविधाओं की व्यवस्था के बारे में अनुशंसा की गई। समुदाय और विद्यालय की दूरी को कम करने के लिए भी इस रूपरेखा में सुझाव दिये गए।

2. प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या एक फ्रेमवर्क 1988

इस पाठ्यचर्या की मुख्य विशेषताएँ –

मानव संसाधनों का विकास, सभी को सामान्य शिक्षा, प्रारंभिक व माध्यमिक स्तर तक सामान्य स्कीम, सामान्य केंद्रीय तत्त्वों में – भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक दायित्व, राष्ट्रीय पहचान का पोषण, भारतीय सांस्कृतिक धरोहरों समतावाद, प्रजातंत्र और पंथनिरपेक्षता, लैंगिक समानता, पर्यावरण सुरक्षा, सामाजिक बाधाओं को दूर करना और वैज्ञानिक भाव बनाना न्यूनतम अधिगम परिणाम सभी स्तरों पर प्राप्त करना। लचीलापन का प्रावधान जिसमें विषय वस्तु और अधिगम अनुभव सम्मिलित हो। छात्र-छात्रा केंद्रित क्रियात्मक गतिविधि आधारित प्रक्रिया अपनाना बजाय कि अध्यापक केंद्रित प्रक्रिया के सतत और व्यापक मूल्यांकन में शिक्षित और अशिक्षित पक्षों का शिक्षा में समावेशन पूरे समय के लिए करना। राष्ट्रीय परीक्षण सेवा हेतु चयन और मानदंड विकास हेतु करना। सभी के लिए पाठ्यचर्या को लागू करना। पाठ्यचर्या को प्रभावी रूप से सभी विद्यालयों और अनौपचारिक अधिगम केंद्रों पर लागू करने के लिए आवश्यक सुविधाओं का प्रावधान करना।

इस पाठ्यचर्या में अध्ययन की योजना के अंतर्गत पूर्व प्राथमिक शिक्षा 2 वर्षीय, प्रारंभिक शिक्षा 8 वर्षीय, जिसमें प्राथमिक स्तर 5 वर्षीय और उच्च प्राथमिक स्तर 3 वर्षीय सम्मिलित हैं। माध्यमिक स्तर 2 वर्षीय किए जाने की अनुशंसा की है।

पाठ्यचर्या के क्षेत्र में भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कार्यानुभव, कला शिक्षा, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा संबंधित हैं। शिक्षण अनुदेशन की विधियों में विभिन्न विधियों का उपयोग दिया गया है मूल्यांकन में बालक की आधारभूत कौशल और वांछनीय अभिवृत्ति और मूल्यों का मूल्यांकन किए जाने की अनुशंसा की है।

विद्यालय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000 में कहा गया है कि किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली की रचना उसकी अपने ही दार्शनिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराओं के सुदृढ़ धरातल पर होनी चाहिए। उसमें देश की आवश्यकता और आकांक्षाओं की झलक मिलनी चाहिए। इसमें पाठ्यचर्या रूपरेखा के स्वदेशी पन की अनुशंसा पर बल दिया गया जिसकी जड़ें भारतीय यथार्थ और भारत की सामाजिक संस्कृति में निहित हो। भारत की समृद्धि और सांस्कृतिक विरासत और विश्व सभ्यता के लिए भारतीय सभ्यता के योगदान के प्रति चेतना का भी दृढ़ता पूर्वक उल्लेख किया गया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 1988 अनुशंसाए

प्रथम अध्याय उभरती हुई चिंताएँ और अनिवार्यता में पश्चमुखी पाठ्यचर्या के सरोकार, पाठ्यचर्या सरोकार और शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली के विषय में बताया है। अध्याय 2 में पाठ्यचर्या का संगठन है जिसमें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, न्यूनतम अधिगम स्तर, सामान्य केंद्रीय तत्त्व, उद्देश्य निर्धारण, अध्ययन की स्कीम, विभिन्न स्तरों और पाठ्यचर्या क्षेत्रों, अनुदेशन तरीकों, अनुदेशन के माध्यम, अनुदेशन का समय और विभिन्न क्षेत्रों के लिए समय वितरण को प्रस्तुत किया गया है। अध्याय 3 में परीक्षा और मूल्यांकन सुधार के अंतर्गत मूल्यांकन के क्षेत्र, मूल्यांकन के उपकरण, मूल्यांकन की तकनीक और तरीके, मूल्य प्रदान करना, रिकॉर्ड रिपोर्ट का रखरखाव, परीक्षा सुधार और शैक्षिक परीक्षण सेवाओं को बताया गया है। अध्याय 4 में क्रियान्वयन के अंतर्गत पाठ्यचर्या विकास के लिए व्यावसायिक सहायता, अध्यापकों के पूर्व और सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए व्यावसायिक सहायता, शिक्षण अधिगम के लिए शैक्षिक तकनीकी सहायता, कार्य अनुभव कार्यक्रमों को लागू करने के लिए और संस्थागत और संस्थानों के सुधार के लिए साधनों के प्रावधान के बारे में लिखा गया है।

इस पाठ्यचर्या के मुख्य लक्ष्य इस प्रकार रखे गए- शिक्षा की गुणवत्ता संस्थान और क्षेत्रीय स्तर की विभिन्नताओं को कम करना, सभी विद्यालय शिक्षा के स्तरों पर राष्ट्रीय मानदंड- न्यूनतम अधिगम स्तर को निर्धारित करना, राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के उद्देश्यों में समान योजना प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर पर लाना, बालक के चहुँमुखी विकास के लिए लचीलापन, राष्ट्रीय शैक्षिक परंपराओं, भारतीय संविधान में निहित मूल्य द्वारा

भारत की भावनात्मक एकता और राष्ट्र की भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए अनुशंसा दी गई।

3. विद्यालय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000 को 5 भागों में दिया गया है-

1. संदर्भ और सरोकार - इस भाग में सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, विद्यालय शिक्षा का परिदृश्य, पाठ्यचर्या विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, पाठ्यचर्या के सरोकार, शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया के रूप में, अग्रणी और भावी पाठ्यचर्या की दशा तथा पाठ्यचर्या विकास प्रक्रिया के प्रति दृष्टिकोण के बारे में बताया गया है।

2. प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या संयोजन - इस भाग के अंतर्गत मूल्य शिक्षा, समान केंद्रीक घटक, स्वदेशी पाठ्यचर्या की ओर, न्यूनतम अधिगम स्तर, शिक्षा के सामान्य उद्देश्य, शिक्षार्थी का परिचय, अध्ययन योजना, विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या क्षेत्र, कार्य शिक्षा, कला शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर शिक्षण युक्तियाँ, शिक्षण का माध्यम, शिक्षण अवधि और मुक्त शिक्षण प्रणाली के विषय में अनुशंसा दी गई हैं।

3. उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्या का संयोजन - इस भाग के अंतर्गत संदर्भ, सम स्थिरीकरण, पाठ्यचर्या संयोजन, अकादमीक धारा, अध्ययन योजना, शिक्षण युक्तियाँ शिक्षण समय, व्यावसायिक धारा अध्ययन योजना, शिक्षण युक्तियाँ, शिक्षण समय, मूल्यांकन और प्रमाण पत्रीकरण, मुक्त विद्यालय शिक्षा व्यवस्था की अनुशंसा की गई है।

4. मूल्यांकन - इस भाग के अंतर्गत वर्तमान मूल्यांकन की प्रणाली, मूल्यांकन का उपयोग, मूल्यांकन की विशेषताएँ, विभिन्न स्तरों पर मूल्यांकन, स्तर संपोषण, वर्तमान प्रस्ताव, राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन से संबंधित अनुशंसा की गई है।

5. व्यवस्था का प्रबंधन - रूपरेखा के इस भाग में पाठ्यचर्या विकास के लिए व्यवस्था गत सहयोग, अध्यापक शिक्षा प्रणाली के लिए व्यावसायिक सहयोग, विद्यालय शिक्षा में सूचना संचार प्रौद्योगिकी का एकीकरण, व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंधन, मूल्य विकास के लिए शिक्षा, विशेष आवश्यकता वाले छात्रों के लिए कार्य नीतियों का क्रियान्वयन, मूल्यांकन कार्य नीतियों का क्रियान्वयन, मार्गदर्शन और परामर्श, संस्थागत और संगठनगत सुधार और हस्तक्षेप (इन्टरवेंशन) के साधनों के बारे में लिखा गया है।

पाठ्यचर्या के सरोकार - इसमें निम्नलिखित सरोकारों के बारे में लिखा गया है- समरसता पूर्ण समाज के लिए शिक्षा जिसमें बालिकाओं और विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों, सुविधावंचित समूह के शिक्षार्थियों, होनहार और प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा को विशेष रुप से उल्लेखित किया गया है, राष्ट्रीय अस्मिता का सुदृढ़ीकरण और सांस्कृतिक विरासत का सरंक्षण, स्वदेशी ज्ञान का समेकन और मानवता के लिए भारतीय योगदान, भूमंडलीकरण के प्रभाव के प्रत्युत्तर में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की चुनौतियों का सामना करना , जीवन कौशल से शिक्षा के संबंध, मूल्य विकास के लिए शिक्षा, वैकल्पिक और मुक्त विश्वविद्यालय व्यवस्था, पाठ्यचर्या अंतर्गत विविध सरोकारों का समेकन, कार्य जगत से शिक्षा की संबंद्धता, पाठ्यक्रम भार को घटाना, ज्ञान निर्माता के रूप में बच्चे, संज्ञान, संवेग और क्रिया के बीच सामंजस्य, संस्कृति -विशिष्ट शिक्षा शास्त्र, सौंदर्य बोध का विकास, सतत और व्यापक मूल्यांकन एवं पाठ्यचर्या विकास के लिए शिक्षा शिक्षकों का सबलीकरण सरोकारों को मुख्य रूप से उजागर किया गया है।

पाठ्यचर्या के मुद्दे- जिसमें मुख्य रूप से भाषा शिक्षण और शिक्षा के माध्यम से जुड़े मुद्दे, सभी स्तरों के लिए कॉमन कोर्स रचना की आवश्यकता, सामाजिक समरसता से जुड़े केंद्रीय मुद्दे, पंथनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता के साथ इन सब की शैक्षिक प्रक्रिया से संबद्धता या प्रासंगिकता जैसे मुद्दों को इसमें शामिल किया गया है।

नये सरोकारों की पुनर्रचना - स्वस्थ, आनंदाई और तनाव रहित शिक्षा, शिशु की देखभाल और शिक्षा, उत्कृष्टता की संप्राप्ति के लिए प्रतिभाओं को निरंतर गतिशील बनाए रखते हुए उनका समुचित पोषण और पाठ्यचर्या के बोझ को कम करने जैसे नए सरोकार इस रूपरेखा में शामिल किए गए हैं।

आसपास के परिवर्तनों के संदर्भ में सुझाव - इस पाठ्यचर्या में पर्यावरण शिक्षा का प्राथमिक स्तर के प्रथम 2 वर्षों की शिक्षा में भाषा गणित और अन्य गतिविधियों के साथ समन्वय, प्राथमिक स्तर पर ही कला शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा और कार्य शिक्षा का स्वस्थ और उत्पादक जीवन के लिए कला के साथ समेकन, सभी धर्मों के विषय में शिक्षा, सामाजिक विज्ञान में विषय वस्तु आधारित समझ पैदा करने वाला समेकित उपागम, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समेकन, माध्यमिक स्तर पर गणित को जीवन के निकट लाना और वर्तमान विज्ञान प्रयोगशाला में व्यापारिक गणित के लिए स्थान नियत करना आदि कुछ नए तत्त्वों का समावेश इस दस्तावेज में किया गया है।

इसके अतिरिक्त शिक्षकों में विश्वास उनके सबलीकरण और उनकी सहभागिता को योजना निर्माण, क्रियान्वयन, पाठ्यचर्या के मूल्यांकन और पाठ्य सामग्री के निर्माण में महत्त्वपूर्ण माना है। अभिभावकों और आमजन समुदाय के प्रबोधन, सहभागिता और जवाबदेही के लिए भी इस दस्तावेज में सुझाव दिए गए हैं। बालकों के मूल्यांकन के संदर्भ में भाषा कौशलों के मौखिक एवं श्रव्य मूल्यांकन की प्रणाली लागू करने,

व्यक्तिगत और समूह में स्व-मूल्यांकन की प्रणाली अपनाने पर भी इस दस्तावेज में कहा गया है।

4. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005

पाठ्यचर्या के दस्तावेज को पांच मुख्य भागों में बाँटा गया है-

1. परिप्रेक्ष्य - इसके अंतर्गत इस दस्तावेज का परिचय, पश्चावलोकन, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, मार्गदर्शक सिद्धांत, गुणवत्ता के आयाम, शिक्षा का सामाजिक संदर्भ और शिक्षा के लक्ष्य रखे गए हैं।

2. सीखना और ज्ञान - इस भाग के अंतर्गत सक्रिय विद्यार्थी की प्राथमिकता, विद्यार्थी को संदर्भ में सीखना, विकास और सीखना, पाठ्यचर्या एवं व्यवहार के लिए निहितार्थ जिसमें ज्ञान सर्जन के लिए अध्यापन, अंत:क्रिया का मूल्य, शैक्षिक अनुभवों की रूपरेखा बनाना, नियोजन के उपागम, विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र, ज्ञान एवं समाज के अंतर्गत बुनियादी क्षमताएँ, व्यवहार में ज्ञान, समझ के रूप में, ज्ञान को फिर से रचना, बच्चों का ज्ञान व स्थानीय ज्ञान, स्कूली ज्ञान और समुदाय और कुछ विकासमूलक विचार इस दस्तावेज में दिए गए हैं।

3. पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्थाएँ और आकलन - के अंतर्गत भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला शिक्षा, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, काम और शिक्षा, शांति के लिए शिक्षा, आवास सीखना, अध्ययन और आकलन की योजनाएँ, आकलन और मूल्यांकन को सम्मिलित किया गया है। भाषा के अंतर्गत भाषा शिक्षा, घरेलू / प्रथम भाषाए या मातृभाषा शिक्षा, द्वितीय भाषा सीखना, पढ़ना-लिखना सीखना, गणित के अंतर्गत स्कूली गणित का दर्शन, पाठ्यचर्या, कंप्यूटर विज्ञान को सम्मिलित किया गया है। विज्ञान के अंतर्गत विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या और विज्ञान के दृष्टिकोण को लिया गया है। सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत प्रस्तावित ज्ञानमीमांसा पाठ्यचर्या का नियोजन, शिक्षा शास्त्र के संसाधनों के अधिगम को सम्मिलित किया गया है। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा तथा शांति के लिए शिक्षा में भी रणनीतियों को लिया गया है। अध्ययन और आकलन की योजनाओं में प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा, आरंभिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा ,उच्च माध्यमिक शिक्षा और मुक्त विद्यालय और सेतु विद्यालय के बारे में अनुशंसा दी गई हैं। आकलन और मूल्यांकन के अंतर्गत आकलन के उद्देश्य, शिक्षार्थियों का आकलन, शिक्षण के क्रम में आकलन, पाठ्यचर्या के क्षेत्र जो अंको के लिए जाने नहीं जा सकते, आकलन की रूपरेखा और उसका संचालन, स्व-आकलन और प्रतिपुष्टि क्षेत्र जिनके बारे में नए सिरे से सोचने की जरूरत है और विभिन्न चरणों में आकलन को इस दस्तावेज में स्थान दिया गया है।

4. विद्यालय एवं कक्षा के वातावरण - इसमें भौतिक वातावरण, सक्षम बनाने वाले वातावरण का पोषण , सभी बच्चों की भागीदारी जिसमें बच्चों के अधिकार और समावेशन की नीति सम्मिलित है। अनुशासन और सहभागी प्रबंधन, अभिभावकों और समुदाय के लिए स्थान, पाठ्यचर्या के स्थल और अधिगम के संसाधन जिसमें पाठ्य पुस्तकें पुस्तकालय, शैक्षिक तकनीकी, उपकरण-प्रयोगशाला अन्य स्थल एवं अवसर, बहुलता और वैकल्पिक सामग्रियों की आवश्यकता, संसाधनों का संयोजन और उनकी व्यवस्था को शामिल किया गया है। समय, शिक्षक की स्वच्छता और व्यावसायिक स्वतंत्रता जिसमें चिंतन और नियोजन है, इस दस्तावेज में शामिल किया गया है।

5. व्यवस्थागत सुधार - इसमें गुणवत्ता को लेकर सरोकार जिसमें अकादमिक नियोजन और गुणवत्ता प्रबोधन, स्कूल प्रबोधन के लिए स्कूलों में अकादमी नेतृत्व तथा पंचायत और शिक्षा को लिया गया है। पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए शिक्षक शिक्षा में शिक्षक शिक्षा के वर्तमान सरोकार, शिक्षक का शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण , शिक्षक शिक्षा के कार्यक्रम में बदलाव के कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु, सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा और प्रशिक्षण, सेवारत शिक्षक शिक्षा के पहले और रणनीतियाँ इस दस्तावेज में स्थान दिया गया है। परीक्षा सुधार के अंतर्गत पेपर निर्धारण, परीक्षा और रिपोर्ट, आकलन में लचीलापन अन्य स्तरों पर बोर्ड परीक्षाएँ और प्रवेश परीक्षाएँ सम्मिलित की गई हैं। काम केंद्रित शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण को लिया गया है। विचार और व्यवहार में नवाचार के अंतर्गत पाठ्यपुस्तकों की बहुलता, नवाचार को बढ़ावा देना, तकनीकी के उपयोग को लिया गया है और अंत में नई साझेदारी के अंतर्गत गैर सरकारी संगठन, नागरिक समाज समूह और शिक्षक संगठनों की भूमिका को इस दस्तावेज में सम्मिलित किया गया है।

इस पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या की रूपरेखा के मार्गदर्शक सिद्धांतों में 5 सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है -

1. ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना

2. पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना

3. पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुंमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाय इसके कि वह पाठ्यपुस्तक केंद्रित बनकर रह जाए।

4. परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना और

5. एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हो।

उपर्युक्त मार्गदर्शक सिद्धांतों के आधार पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा को रखा गया है।

(शेष भाग आगामी अंक में क्रमशः)

भारत की प्राचीनतम ज्ञान परम्परा का वैशिष्ट्य

प्रो. कमला भारद्वाज
पूर्व छात्र कल्याण संकाय प्रमुख
श्री लाल बहादुर शास्त्री
नेशनल संस्कृत विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

अनादि काल से ही भारत अपनी समृद्ध ज्ञान परम्परा से विश्वगुरु के गरिमामय पद से गौरवान्वित होता रहा है। भारत की ज्ञान परम्परा प्राचीन और शाश्वत रूप से गंगा नदी के प्रवाह के समान सतत और अबाधित प्रवहमान है। विश्व में प्रतिष्ठित अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है हमारी ज्ञान परम्परा, जिसमें ज्ञान और विज्ञान लौकिक एवं पारलौकिक कर्म और धर्म, भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। प्राचीन काल में शिक्षा प्रणाली ज्ञान परंपराएँ और प्रथाएँ मानवता को प्रोत्साहित करती थीं। भारत के तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, वल्लभी, उज्जयिनी, काशी आदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे।

हमारे तप:पूत साक्षात्कृतधर्म ऋषियों ने ज्ञानमयी प्रतिभा के आधार पर प्राचीन शिक्षा प्रणाली में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर ध्यान केन्द्रित किया तथा सत्यता, सम्मान, आत्मानुशासन, आत्मनिर्भरता सदृश मूल्यों पर बल दिया। भारतीय शिक्षा का स्वरूप जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक है। यही कारण है कि वैदिक काल से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक बौद्धिक मूल्यों पर आधारित है। ऋग्वेद में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया है। छात्रों को मानव, प्राणियों और प्रकृति के मध्य संतुलन बनाए रखने की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद के सिद्धांतों का अनुपालन आवश्यक समझा जाता था, जिससे व्यक्ति स्वयं परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूर्ण कर सके। भारतीय प्राचीन ज्ञान परम्परा में जीवन के सभी पक्ष सम्मिलित थे।

भारतीय परम्परा में ज्ञान को परा और अपरा विद्या में विभाजित किया गया। महर्षि मनु ने अध्येय विषयों का विभाजन त्रिविध किया है - 1. लौकिक, 2. वैदिक और 3. आध्यात्मिक। लौकिक विषयों में शिल्पकला आदि औद्योगिक विषय तथा वैदिक ज्ञान अपरा विद्या नाम से अभिहित है, जिसमें वेद-वेदांग इतिहास पुराण काव्य-शास्त्र, आन्वीक्षिकी इत्यादि विषय हैं। अध्यात्म विद्या परा विद्या है, जो उपनिषदों में प्रमुखतया अनुसंहित है। वैदिक शिक्षा

की अर्थ परिधि में द्विविध स्वरूप विद्यमान है। प्रथम में वैदिकसूक्त, मन्त्र और तत्सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थ। द्वितीय में यज्ञ कर्म में विनियोग होने वाले सूक्त आदि 5 अन्तर्हित हैं। वैदिक वांग्मय के अध्ययन के लिए वेदांग (शिक्षा, कल्प, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण एवं निरुक्त) का ज्ञान आवश्यक है। वेदांगों का ज्ञान न केवल मन्त्रों की रचना के लिए अपितु उनके अर्थ बोध के लिए, तदनु विनियोग के लिए अपरिहार्य है।

वैदिक वाङ्मय, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति ग्रन्थ, दर्शन, धर्म ग्रन्थ, काव्य, नाटक, व्याकरण, ज्योतिष शास्त्र, नीति परक साहित्य आदि सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा गीर्वाणवाणी संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध है। संस्कृत के शाश्वत स्वरूप के कारण ही सहस्त्रों वर्षों से हमारी अतुलनीय ज्ञान राशि यथार्थ रूप में संरक्षित एवं सुरक्षित रही है। पारम्परिक ज्ञान सम्पदा की यथा प्रासंगिकता प्राचीन काल में थी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी तथावत् है अपितु अपेक्षाकृत अधिक है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा का ज्ञान परम आवश्यक है। संस्कृत के अध्ययन से छात्र न केवल अतीत के पारम्परिक ज्ञान से लाभान्वित होंगे अपितु गौरवान्वित भी होंगे। शिक्षा के सभी स्तरों पर संस्कृत की उपादेयता स्वत: सिद्ध है।

विदेशी वैज्ञानिक भी भारतीय पारम्परिक ज्ञान की गुणवत्ता एवं वैशिष्ट्य के समक्ष नतमस्तक हैं। परिवर्तन शील सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के सन्दर्भ में हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इसका उद्देश्य शिक्षार्थियों को हमारी समृद्ध सनातन संस्कृति से अवगत कराना है। प्राचीन सनातन ज्ञान और विचार की समृद्ध परम्परा के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई गई है। यह नीति प्राचीन शिक्षा प्रणाली के ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज की भारतीय विचार परम्परा और दर्शन में सदा सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक है तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परम्परा की सार्थकता को सिद्ध एवं परिपुष्ट करती है।

संस्कृत भारतीय संस्कृति की संवाहिका है, संस्कारों की आधायिका है। अत: एन.ई.पी. ने प्राचीन भारत के गौरवशाली अतीत को मान्यता दी है। प्राचीन भारत के वेदव्यास, वाल्मीकि, सुश्रुत, वराहमिहिर, कणाद, आर्यभट्ट, भर्तृहरि, चाणक्य, पाणिनि, पतञ्जलि, शंकराचार्य और स्वामी विवेकानंद, सदृश अनेकानेक मनीषी आचार्यों एवं अपाला, मैत्रेयी, गार्गी, लोपामुद्रा आदि वैदिक काल की मन्त्रदृष्टा ऋषिकाओं ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी दिव्य मेधा से विश्व में भारतीय ज्ञान परम्परा की समृद्धि हेतु अतुल्य योगदान किया है। इन आचार्यों के द्वारा प्रदत्त विविध विषयों के ज्ञान को वर्तमान पाठ्यक्रम में विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक सम्मिलित करने का शिव संकल्प लिया है।

इस संकल्प के अन्तर्गत वैदिक शिक्षा, संस्कृत भाषा और साहित्य, भारतीय दर्शन और प्राचीन भारतीय ज्ञान के विविध क्षेत्रों को पुनर्जीवित करने के लिए अत्यावश्यक प्रशंसनीय प्रयास प्रारम्भ किया है। विद्यालय स्तर पर रामायण, महाभारत, गीता, पुराण, नीति कथाएँ, संस्कार, कथाओं, सरल श्लोकों और कविताओं के माध्यम से रुचिकर पद्धति से शिक्षण श्रेयस्कर है। योग के विषय में पतञ्जलि योगसूत्र के विषय में सूर्य नमस्कार, आसन, प्राणायाम, क्रोध प्रबंधन अभ्यास, एकाग्रता, स्मृतिविकास विषयक अभ्यास उपादेय है।

संस्कृत के पारंपरिक शास्त्रों में निहित ज्ञान विज्ञान के तत्त्वों का शोधपरक गहन अध्ययन उच्चतर स्तर पर किया जाना अपेक्षित है। वैदिक वाङ्मय में देवताओं के स्तुति परक मन्त्रों के माध्यम से प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना प्रत्यक्ष प्रतिबिंबित है। पृथिवी, जल, वायु आकाश, अग्नि इन पंच महाभूतों के संतुलन के लिए इन तत्त्वों का दोहन त्याग भाव से करना वेदों, पुराण और महाभारत आदि में निर्दिष्ट है। यहाँ तक कि ओजोन लेयर (महदुल्ब)को

संरक्षित करने का भी निर्देश है। जल ही जीवन है वैश्विक उष्णता के कारण भीषण जल संकट से विश्व त्रस्त है इस संकट का निदान शास्त्रों में प्रस्तुत है। शास्त्रों में जल के प्रकार, भेद, शुद्धीकरण, जलप्राप्ति, संरक्षण एवं यज्ञ द्वारा अन्तरिक्ष में जल संवर्धन आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रदत्त है। अतः जल संरक्षण शास्त्रों की दृष्टि से ही कल्याणकारी होगा। इसी प्रकार वन और वृक्ष हमारे प्राणदाता हैं। पुराणों में निर्दिष्ट है कि वृक्षारोपण एवं वृक्षों का पालन पुत्रवत् करना चाहिए। अग्नि पुराण में वृक्षायुर्वेद के विषय में विस्तृत विवेचन है। वनों के नाश से विभीषिका का दंश कोरोना महामारी के रूप में विश्व को आक्रान्त किए हुए है। इस प्रकार की वैश्विक आपदाएँ त्रस्त न करें एतदर्थ ऋषियों एवं ग्रन्थकारों की प्राकृतिक संरक्षण से सम्बद्ध सूक्ष्मेक्षिका द्वारा प्रदत्त निर्देशों का अनुपालन आवश्यक है। प्राकृतिक सम्पदा संरक्षण के गहन चिंतन के साथ ही पारिवारिक, सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक परिवेश की दृष्टि से भी ज्ञान परम्परा समृद्ध है। गुरु, माता, पिता, पुत्र, पति, पत्नी का परिवार में समन्वयात्मक व्यवहार होना चाहिए। परिवार में सामञ्जस्य होगा तो समाज राष्ट्र और विश्व में परस्पर बन्धुत्व का भाव, वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव जागृत हो जाता है। राष्ट्रीयैकता की भावना हमारी शास्त्रीय परम्परा की अन्यतम विशेषता है।

राष्ट्रीय एकता अक्षुण्ण रहे एतदर्थ सर्वधर्मसमभाव आवश्यक है। धर्म से अभिप्राय है धारणात् धर्म इत्याहुः। यथा यतोह्यभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः। आज सर्वाधिक आवश्यकता है धर्म का वास्तविक अभिप्राय समझने की। धृति क्षमा दम अस्तेय आदि लक्षणों से युक्त व्यक्ति का चरित्र आदर्श माना गया है। प्रत्येक गृहस्थ के लिए ब्रह्म, देव, पितृ, भूत एवं अतिथि पञ्च महायज्ञों का

अनुपालन शास्त्रों में कल्याणकारी माना गया है। भारतीय दर्शन शास्त्रों में अणु सिद्धांत, सृष्टि प्रक्रिया, आत्मा, परमात्म ज्ञान के साथ जीवन दर्शन की कला निहित है। भगवान श्री कृष्ण के मुख से निःसृत गीता ज्ञान जीवन में कर्मयोग, ज्ञान योग, भक्ति योग के साथ जीवन प्रबंधन, आत्मानुशासन, कर्तव्य निष्ठा एवं स्वधर्मानुपालन का उपदेश देता है। राजधर्म, राजनीति, राष्ट्र प्रबंधन, विधिव्यवस्था, दण्ड नीति आदि का विस्तृत विवेचन कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं नीति शास्त्रों में निहित है।

हमारी समृद्ध ज्ञान परम्परा में ज्ञान के अतिरिक्त विज्ञान के विषय भी सूक्ष्मतया यत्र तत्र सर्वत्र अनुस्यूत हैं। कृषि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जल विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, वृष्टि विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान सृष्टि विज्ञान, रसायन शास्त्र, सैन्य विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र विद्या, विमान शास्त्र, यज्ञ विज्ञान आयुर्विज्ञान आदि प्रत्येक विषय से सम्बद्ध वैज्ञानिकतया व्याख्या पारम्परिक शास्त्रों में उपलब्ध होती है। अन्तरिक्ष सम्बद्ध वैज्ञानिक तत्वों को नासा तथा इसरो अन्तरिक्ष अनुसंधान केन्द्र भी अनुपालन करते हैं। इस की वैज्ञानिकता को नासा ने 1987 में ही संस्कृत को कम्प्यूटर के लिए सर्वोत्तम भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की। विदेशी वैज्ञानिक भी भारतीय पारम्परिक ज्ञान की गुणवत्ता एवं वैशिष्ट्य के समक्ष नतमस्तक हैं। परिवर्तन शील सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के सन्दर्भ में हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इसका उद्देश्य शिक्षार्थियों को हमारी समृद्ध सनातन संस्कृति से अवगत कराना है। प्राचीन सनातन ज्ञान और विचार की समृद्ध परम्परा के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई गई है। यह नीति प्राचीन शिक्षा प्रणाली के ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की ख़ोज की भारतीय विचार परम्परा और दर्शन में सदा सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक है तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परम्परा की सार्थकता को सिद्ध एवं परिपुष्ट करती है। राष्ट्रीय एकता की भावना का सन्देश देती है।

उत्तरं यद् समुद्रं
हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम
भारतीया यत्र सन्ततिः।। ❑

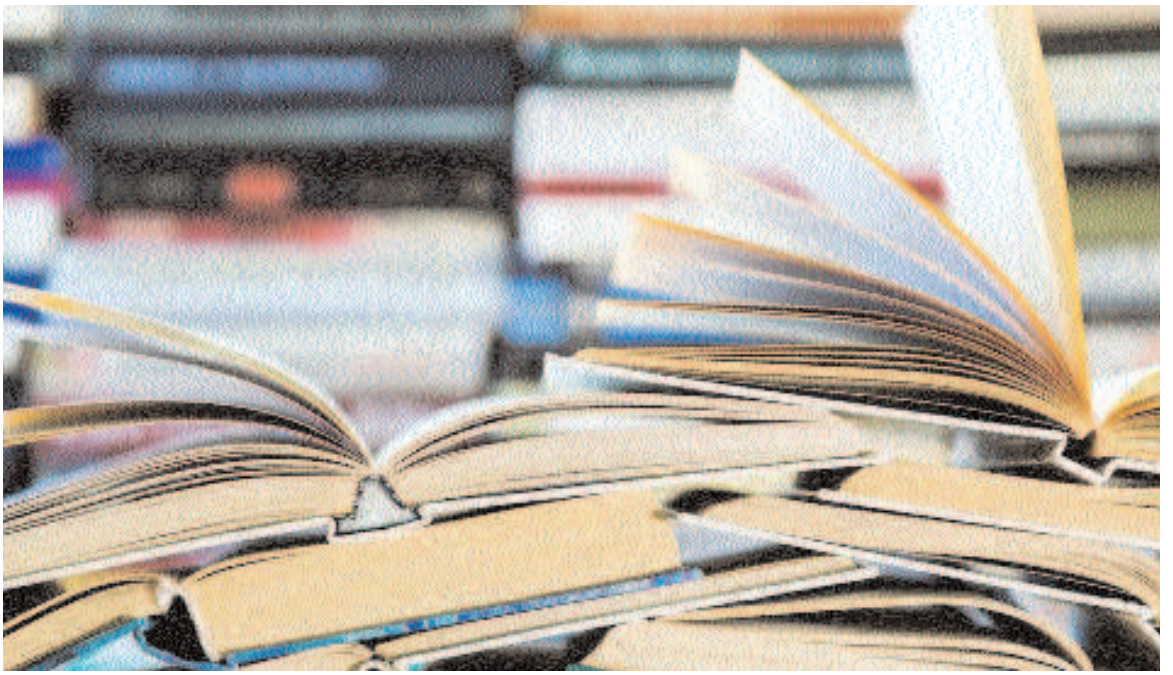

सांस्कृतिक विचारधाराओं के पाठ्यपुस्तकों में समावेश का औचित्य

डॉ. चन्द्रवीर सिंह भाटी
सहायक आचार्य –
राजनीति विज्ञान,
राजकीय महाविद्यालय,
बांसवाडा (राज.)

समाज के सुचारू व सुव्यस्थित संचालन के लिए नियमों, मूल्यों और मानकों की आवश्यकता होती है। ये नियम, मूल्य, मानक, आचार-विचार संस्कृति का निर्माण करते हैं। प्रत्येक समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, अत: उनके अनुरूप भिन्न-भिन्न नियमों, विधानों, मूल्यों मानकों का सृजन होता है। अत: प्रत्येक समाज की संस्कृति परिस्थिति, आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। एक ही देश या समाज की संस्कृति भी समय, परिस्थिति और आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित और परिवृद्धित होती रहती है। अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में अमेरिका में रंगभेद और भारत में जातिभेद समाज में विद्यमान था। परन्तु परिवर्तित परिस्थितियों में इक्कीसवीं शताब्दी में जातिभेद व रंगभेद सम्बंधी विचारों व मान्यताओं में अंतर आया और वर्तमान में दोनों ही प्रासंगिक नहीं रहे। विचारों, मूल्यों में जो परिवर्तन हुए उनको ही नवीन पीढ़ी सीखती है और आगे हस्तांतरित करती है। अत: हाबल के अनुसार संस्कृति सीखे हुए व्यवहार और प्रतिमानों का कुल योग है। पावेल के अनुसार संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है जो सीखा जा सके वही संस्कृति है।

संस्कृति को सीखने और सिखाने के कई आधार हैं जैसे परिवार, समाज, विद्यालय आदि। समाज के विभिन्न संगठन व समूह जो सीखाते हैं वही भावी पीढ़ी की विचारदृष्टि को तय करता है और इन्ही आधारो पर समाज व राष्ट्र का भविष्य तय होता है। समाज के विभिन्न समूहों सगठनों में संस्कृति प्रवाह में विद्यालय की भूमिका महत्त्वपूर्ण है क्योंकि एक विद्यार्थी अपने जीवन के पन्द्रह वर्ष विभिन्न शिक्षण संस्थानों में व्यतीत करता है। इन शिक्षण के वर्षों में उसका जो दृष्टिकोण सुनिश्चित हो जाता है वह जीवन पर्यन्त उसके अनुसार आचरण करता है। अत: विद्यार्थी, को किस तरह की शिक्षा प्रदान की जा रही है, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पश्चिम में और वर्तमान में भारत में भी शिक्षा का तात्पर्य युवा की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम बनाना मात्र भर रह गया है। जबकि वस्तुत: प्राचीन भारतीय मनीषियों ने शिक्षा को अलग रूप से परिभाषित किया है। महर्षि अरविंद के अनुसर शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति की आंतरिक शक्तियों का विकास है। स्वामी विवेकान्द के अनुसार मनुष्य मे निहित परिपूर्णता को उद्घाटित करना ही शिक्षा है। हिन्दू, जैन और बौद्ध दर्शन मे भी शिक्षा को मोक्ष और परमतत्व की प्राप्ति से जोड़ा गया है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का विकास भी इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया। धर्म,

अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के अनुरूप जीवन व शिक्षा पद्धति को निर्धारित किया गया। वैदिक काल से गुप्तोत्तर काल तक इन्हीं मूल्यों और विचारों के आधार पर संस्कृति का संवर्द्धन और परिवर्द्धन होता रहा। परंतु मध्यकाल में दुर्दान्त आक्रांताओं द्वारा भारतीय संस्कृति के संवाहक आधार स्तम्भों जैसे कि धार्मिक स्थलों, विश्वविद्यालयों पर आक्रमण कर तहस नहस कर देने के कारण सांस्कृतिक विचार मूल्य क्षीण होने लगे।

कालांतर में ब्रिटिश आक्रांताओं ने भारतीय शिक्षा पद्धति को अपनी साम्राज्यिक और आर्थिक आवश्यकता के अनुरूप विकसित करने का प्रयत्न किया। ईसाई मिशनरियों के शिक्षा के विकास का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार कर धर्मान्तरण करना था। 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा मिशनरियों को भारत में धर्मप्रचार और शिक्षण कार्य की स्वतन्त्रता मिली। ब्रिटिश कम्पनी द्वारा बनारस संस्कृत कॉलेज और कलकत्ता मदरसा भी संचालित किये जाते थे, पर प्राच्य विद्या पर आधारित ऐसे संस्थानों की संख्या लगभग नगण्य थी। 1854 तक कम्पनी ने भी शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया था। उसका कारण ब्रिटिश साम्राज का विस्तार व सुदृढ़ीकरण करना था। 1854 में प्रथम बार शिक्षा विभाग की स्थापना की गयी। ब्रिटिश कम्पनी ने जो शिक्षण व्यवस्था स्थापित की उसका उद्देश्य कम्पनी और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अंग्रेजी जानने वाला कर्मचारी वर्ग तैयार करना था। ब्रिटिश साम्राज्य भारत में सुरक्षित रहे और भारत में चुनौती नहीं मिले, इस हेतु युवाओं के मन में ब्रिटिश मूल्यों और विचारों के प्रति आस्था बनाये रखने के लिए भी शिक्षा प्रणाली को गठित किया गया। कई भारतीय विद्वानों ने भी पाश्चात्य व अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया जिसमें राजाराम मोहन रॉय प्रमुख थे। उनका मानना था कि तत्कालीन अंधविश्वासों और कुरीतियों को दूर करने के लिए पश्चिमी शिक्षा प्रणाली जरूरी है।

जब युवा रचनात्मक और सही दिशा में उन्मुख हो। इस हेतु शिक्षा प्रणाली को सुधारना होगा और पाठ्यपुस्तकों में ऐसी पाठ्य सामग्री सम्मिलित करनी होगी जो युवाओं को राष्ट्रीयता और धर्म की और प्रेरित करे और जो ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण कर सके जो भारत तेरे टुकड़े होंगे के नारे के स्थान पर अखंड भारत की संकल्पना में विश्वास करे।

वस्तुतः ब्रिटिश काल में शिक्षा के सम्बन्ध मे भारतीय विद्वान दो समूहों में विभक्त हो गये थे - प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी। प्राच्यवादी एक हिन्दू स्वर्ण युग की स्थापना के अनुरूप पारम्परिक भारतीय शिक्षा प्रणाली चाहते थे जबकि पाश्चात्यवादी मानते थे कि सामाजिक सुधारों हेतु अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली आवश्यक है। धीरे-धीरे पाश्चात्यवादी समूह दृढ़ होता गया। मैकाले की अनुशंसा पर 7 मार्च 1835 को विलियम बेटिंग ने जिस शिक्षा नीति की घोषणा की उसके अनुसार ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य भारत में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का विकास करना था। अतः शिक्षा सम्बन्धी समस्त धनराशि का व्यय अंग्रेजी शिक्षा के लिए होना चाहिए। भविष्य में प्राच्य कृतियों के प्रकाशन के लिए किसी भी प्रकार की धनराशि व्यय नहीं की जायेगी एवं भविष्य में प्राच्य व देशी शिक्षा संस्थाओं मे प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृतियाँ प्रदान नहीं की जायेगी। वुड घोषणा पत्र में भी प्राचीन भारतीय विज्ञान, दर्शन को त्रुटिपूर्ण बताते हुए अंग्रेजी साहित्य, दर्शन और विज्ञान के विकास पर बल दिया गया।

1854 में भारतीय संस्कृति पर मध्यकाल में इस्लाम द्वारा और कालांतर में ब्रिटिश द्वारा शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से जो संस्कृति का विघटन किया, उसका परिणाम भारत आज तक भुगत रहा है। स्वतन्त्रता पश्चात् साम्यवादी विचारधारा ने जो मानक शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से समाज को प्रदान किये उनका दुष्प्रभाव वर्तमान युवा पीढ़ी में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। धर्म, राष्ट्र और परिवार विरोधी साम्यवादी विचारधारा ने भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में रहा। धर्मान्ध और अत्याचारी व्यक्तियों को महान् घोषित कर दिया गया। जो महान् थे उनको पाठ्यपुस्तकों से हटा दिया गया। साम्यवादी बुद्धिजीवियों के लेखन और विमर्श से प्रेरित हो युवा पीढ़ी नक्सलवाद के नाम पर देश को कमजोर करने में लग गयी। साम्यवादियों ने पाठ्यपुस्तकों और समाचार पत्रों में असंख्य आलेख लिखकर जिस आर्थिक मॉडल का समर्थन किया उस आर्थिक मॉडल ने 1991 में भारत को आर्थिक दिवालियेपन के कगार पर पहुँचा दिया। इसी साम्यवादी विचारधारा के समर्थकों ने ये भी कहा कि कश्मीर भारत का हिस्सा नहीं है और इसी विचारधारा से प्रेरित होकर युवाओं ने भारत तेरे टुकड़े होंगे के नारे लगाये। स्वतन्त्रता के नाम पर उन्मुक्त उपभोग का विमर्श खड़ा कर के साम्यवादी विचारधारा ने परिवार का ताना-बाना नष्ट कर दिया।

इन समस्याओं का समाधान तभी संभव है, जब युवा रचनात्मक और सही दिशा में उन्मुख हो। इस हेतु शिक्षा प्रणाली को सुधारना होगा और पाठ्यपुस्तकों में ऐसी पाठ्य सामग्री सम्मिलित करनी होगी जो युवाओं को राष्ट्रीयता और धर्म की और प्रेरित करे और जो ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण कर सके जो भारत तेरे टुकड़े होंगे के नारे के स्थान पर अखंड भारत की संकल्पना में विश्वास करे। ❑

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और पाठ्यचर्या की समग्रता

प्रो. रिछपाल सिंह
प्रोफेसर वनस्पति शास्त्र
राजकीय महाविद्यालय लूणी,
जोधपुर (राज.)

चिर प्रतीक्षा के उपरांत केंद्र सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' की घोषणा 29 जुलाई, 2020 को की गई जो सन् 1986 मे जारी की गई शिक्षा नीति के पश्चात शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति के प्रतिवेदन पर आधारित है। किसी भी शिक्षा नीति की क्रियान्विति एवं उसकी सफलता पाठ्यचर्या पर आधारित होती है। अत: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की घोषणा के पश्चात मुख्य चुनौती शिक्षानीति पर आधारित पाठ्यचर्या निर्माण करना है क्योंकि हमारे राष्ट्र के संबंध में हमारे पौराणिक ग्रंथों में कहा गया है कि –

उत्तरं यत् समुद्रस्य
हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम
भारती यत्र सन्ततिः।।

(समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो देश है उसे भारत कहते हैं तथा उसकी संतानों को भारती कहते हैं। विष्णु पुराण 2.3.1)

अर्थात् हिन्द महासागर के उत्तर से लेकर पर्वतराज हिमालय तक का विस्तृत प्राकृतिक भूभाग भौगोलिक, सामाजिक, भाषायी एवं सांस्कृतिक विविधताओं से समृद्ध है अत: यहाँ के निवासियों के लिए पाठ्यचर्या निर्माण करते समय उक्त तथ्यों के गहन अध्ययन की आवश्यकता है। हम जानते हैं की किसी क्षेत्रे विशेष मे रहेने वाले बालक-बालिकाओं/छात्र-छात्राओं के बहुमुखी विकास, उनमें निहित बौद्धिक एवं मौलिक प्रतिभाओं के प्रकटीकरण हेतु पाठ्यचर्या तथा पाठ्यपुस्तकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है अत: पाठ्यचर्या निर्माणक्षेत्रे विशेष की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर करना चाहिए जिसका आग्रह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी किया गया है।

बालक-बलिकाएँ अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहे, मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करें उनमें विविध कौशलों के विकास के साथ-साथ उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके ऐसे उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शिक्षा मंत्रालय (Education Ministry) और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने एक योजना बनाई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत

चार प्रकार की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा निर्माण का प्रावधान है अत: जिन चार पाठ्यचर्या रूपरेखा के निर्माण का निर्णय लिया गया वह निम्नलिखित है –

1. विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा
2. बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा
3. शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा एवं
4. प्रोढ़ शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के निर्माण हेतु सर्वप्रथम राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को राज्य पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करने को कहा गया। राज्यों को इस कार्य हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे वर्णित 25 क्षेत्रों को दृष्टिगत रखते हुए जिला स्तर पर विभिन्न सलाह समूहों से सुझाव आमंत्रित करके, विभिन्न सर्वे करवाकर, और इन विषयों पर विभिन्न पत्रों के प्रस्तुतीकरणों द्वारा राज्य स्तरीय पाठ्यक्रम तैयार करने को कहा गया।

राज्यों से प्रदत्त पाठ्यचर्या रूपरेखा के आधार पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का प्रारूप तैयार किया गया। केंद्र सरकार द्वारा इस वर्ष 6 अप्रैल, 2023 को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का प्रारूप जारी किया गया है तथा इसमें और सुधारों/उन्नयन के लिए शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित संगठनों से सुझाव आमंत्रित किए गए हैं। ज्ञात रहे इसी पाठ्यचर्या रूपरेखा के आधार पर पाठ्यपुस्तकों का निर्माण अथवा लेखन किया जाता है। विभिन्न संगठनों से प्राप्त सुझावों के आधार पर केंद्र सरकार द्वारा जारी की गयी पाठ्यचर्या रूपरेखा में अभी भी सुधारों/उन्नयन हेतु सुझावों की अपेक्षा है। प्राप्त सुझावों अथवा संशोधनों के विश्लेषण करने के पश्चात

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा इस पर आधारित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा दोनों ही विद्यार्थी-अभिभावक एवं राष्ट्र के हित में है तथा ये भारत के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप पर आधारित है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा को सभी क्षेत्रीय भाषाओं में निश्चित समयावधि में तैयार करवा कर उपलब्ध करवाना एवं समय-समय पर इसकी समीक्षा एवं अद्यतनीकरण करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। वर्तमान राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में की गई अनुशंसाएँ प्रासंगिक है तथा शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं के समाधान का सकारात्मक प्रयत्न है, परंतु इसकी सफलता राज्य सरकारों एवं केंद्रशासित प्रदेशों के द्वारा पूर्ण मनोयोग से क्रियान्वयन पर निर्भर है।

ही के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में गठित समिति के द्वारा इस पाठ्यचर्या रूपरेखा को अंतिम रूप प्रदान किया जाएगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में अब तक चार बार 1975, 1988, 2000 व 2005 में संशोधन हो चुके हैं, वर्तमान में होने वाला संशोधन पाँचवा संशोधन होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में 10+2 पद्धति के स्थान पर 5+3+3+4 (उम्र 3–8, 8–11, 11–14, 14–18 वर्ष) विद्यालयी शिक्षा पद्धति का समर्थन किया गया है। 10+2 की वर्तमान शिक्षा पद्धति में 3 से 6 वर्ष के बच्चे शामिल नहीं है जबकि 5+3+3+4 ढाँचे में 3 वर्ष के बच्चों को शामिल कर प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (Early childhood care and Education) की एक मजबूत बुनियाद को शामिल किया गया है। इस पद्धति के अनुसार बालक प्रथम 5 वर्षों में से प्रथम 3 वर्ष तक आंगनबाड़ी अथवा नर्सरी विद्यालय/बालवाटिका में शिक्षा प्राप्त करेंगे जबकि शेष 2 वर्ष कक्षा 1 (छ वर्ष की आयु) व 2 की शिक्षा प्राप्त करेंगे। दूसरी कक्षा तक किसी भी प्रकार की लिखित परीक्षा नहीं लेने की अनुशंसा भी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में की गई है। इस स्तर तक बालकों के मूल्यांकन का आधार अवलोकन, पर्यवेक्षण के साथ-साथ बालकों द्वारा रचनात्मक कलाकृतियों के निर्माण, खेल एवं अन्य सहभागिता की गतिविधियाँ होगी। क्योंकि प्रत्येक बालक की योग्यताएँ एवं क्षमताएँ अलग-अलग होती है अत: शिक्षकों को उनके योग्यता एवं क्षमतानुसार मूल्यांकन हेतु विभिन्न तरह

के मूल्यांकन प्रारूप तैयार करने हेतु मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए।

कक्षा 3 से कक्षा 5 तक लिखित परीक्षा और रचनात्मक गतिविधियाँ मूल्यांकन का आधार रहेंगी जबकि कक्षा 6 से कक्षा 8 तक लिखित परीक्षा के अतिरिक्त प्रोजेक्ट वाद-विवाद प्रस्तुतीकरण प्रयोगधर्मिता अनुसंधान क्षमता आदि का उपयोग छात्रों के मूल्यांकन हेतु किया जाएगा। कक्षा नौवीं और दसवीं में प्रत्येक कक्षा में 8-8 अनिवार्य विषय होंगे तथा दसवीं में बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी, बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करने हेतु कक्षा नवमी एवं दसवीं दोनों के 8-8 अनिवार्य विषयों के प्रश्न सम्मिलित होंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार माद्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों को विषयों के चुनाव मे अधिक विकल्प दिए जाएंगे अत: विद्यार्थी अपनी सुविधानुसार ऐच्छिक विषयों का चुनाव कर सकेंगे। ये ऐच्छिक कोर्स सेमेस्टर सिस्टम पर आधारित होंगे जिनकी अवधि छ माह की रहेगी। कक्षा 11 व 12 में विद्यार्थी 8 पाठ्यचर्या क्षेत्रों के16 कोर्स पढ़ सकेंगे जो इस राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की विशेषता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का यह मानना है कि वर्तमान में विद्यालयों की मूल्यांकन पद्धति विद्यार्थियों में क्षमताओं के संवर्धन करने के स्थान पर क्षमताओं का विघटन/ह्रास करती है। 10वीं एवं 12वीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा विद्यार्थियों और अभिभावकों के तनाव का एक मुख्य कारण है तथा बोर्ड परीक्षा के 3 घंटे की अल्प-अवधि में विद्यार्थी की क्षमताओं एवं उसकी प्रतिभाओं का सही आंकलन करना संभव नहीं है। वर्तमान में यह बोर्ड की परीक्षाएँ विद्यार्थियों में रटने की प्रवर्ति बढ़ाने हेतु प्रेरित करती है। विद्यार्थियों की आंतरिक क्षमताओं का मूल्यांकन करने हेतु विद्यालयों के द्वारा आंतरिक मूल्यांकन के कुछ प्रतिशत अंक भेजने का प्रावधान भी वर्तमान पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क में है परंतु अधिकांश विद्यालयों के द्वारा आंतरिक मूल्यांकन में विद्यार्थियों को अधिकतम अंक भेजे जाते हैं जिससे विद्यालयों का परीक्षा परिणाम अच्छा और कभी-कभी तो शत प्रतिशत रहता है इस प्रकार आंतरिक मूल्यांकन की यह पद्धति विद्यालयों का परीक्षा परिणाम तो शत प्रतिशत तक रखती है परंतु इसके द्वारा विद्यार्थियों की आंतरिक क्षमताओं का मूल्यांकन सही-सही किया जाना संभव नहीं है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा ने इस संदर्भ में छात्रों का बाह्य मूल्यांकन करवाने का सुझाव दिया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के अनुसार शिक्षा बोर्ड केवल परीक्षा लेने एवं परिणाम घोषित करने वाले संस्थान बन गए हैं तथा उनका कार्य भी नौकरशाही पद्धति से चलता है जबकि इन परीक्षा बोर्ड को मूल्यांकन के ऐसे तरीके विकसित करनी चाहिए जिससे विद्यार्थी के कौशल और उसकी क्षमताओं का प्रभावी तरीके से मूल्यांकन किया जा सके इस कार्य हेतु परीक्षा बोर्ड को अपनी शोध इकाई स्थापित करनी होगी।

बोर्ड परीक्षाओं के कारण विद्यार्थियों में मानसिक तनाव की स्थिति बनी रहती है विद्यार्थियों के इस मानसिक तनाव को कम करने के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में परीक्षा बोर्ड को एक स्कूल वर्ष में दो बार बोर्ड परीक्षा देने की अनुमति दी जाएगी एक मुख्य परीक्षा एवं वांछित हो तो अंक सुधार हेतु, जिससे विद्यार्थी अपनी सुविधानुसार बोर्ड परीक्षा दे सकेंगे व उन्हें अपने अंक सुधार का अवसर भी शीघ्रता से प्राप्त हो सकेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा इस पर आधारित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा दोनों ही विद्यार्थी-अभिभावक एवं राष्ट्र के हित में है तथा ये भारत के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप पर आधारित है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा को सभी क्षेत्रीय भाषाओं में निश्चित समयावधि में तैयार करवा कर उपलब्ध करवाना एवं समय-समय पर इसकी समीक्षा एवं अद्यतनीकरण करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। वर्तमान राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में की गई अनुशंसाएँ प्रासंगिक है तथा शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं के समाधान का सकारात्मक प्रयत्न है, परंतु इसकी सफलता राज्य सरकारों एवं केंद्रशासित प्रदेशों के द्वारा पूर्ण मनोयोग से क्रियान्वयन पर निर्भर है। ❑

भारतीय शिक्षा के इतिहास एवं पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन

डॉ. संज्ञा त्रिपाठी
सहायक प्राध्यापक,
समाज कार्य विभाग,
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय,
छत्तीसगढ़

भारतीय सभ्यता भारतीय शिक्षा के इतिहास में भी परिलक्षित होती है। भारतीय समाज में हो रहे विकास और परिवर्तनों में शिक्षा की स्थिति और इसका महत्त्व दोनों लगातार विकसित हो रहे हैं। सूत्रकाल और लोकायत के बीच मौजूद सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का अनुसरण करते हुए, हम देखते हैं कि किस प्रकार बौद्ध शिक्षा बहुत सामाजिक और भौतिक रूप से प्रतिबद्ध हो गई है। बौद्ध काल में महिलाओं और अंत्यजों को भी शिक्षा की मुख्य धारा में स्वीकार किया गया।

प्राचीन भारत में जो शिक्षा प्रणाली बनाई गई थी वह आधुनिक दुनिया की तुलना में लगातार बेहतर थी, लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया, भारतीय शिक्षा प्रणाली बिगड़ती गई। इस देश में स्कूल व्यवस्था का उतना विकास नहीं हुआ है जितना होना चाहिए था। भारतीय शिक्षा में कई बाधाओं को पार करना पड़ा, अपने संक्रमणकालीन समय के दौरान, भारतीय शिक्षा को कई कठिनाइयों और बाधाओं से निपटना पड़ा। ये कठिनाइयाँ और चुनौतियाँ हमारे रास्ते में बनी हुई हैं, और हमें इनसे निपटना चाहिए।

भारत की पारंपरिक शिक्षा आध्यात्मिकता पर आधारित थी। मुक्ति और आत्म-साक्षात्कार शिक्षा के लक्ष्य थे। यह धर्म के लिए किया गया था, व्यक्ति के लिए नहीं। मानव इतिहास की सबसे पुरानी शैक्षिक और सांस्कृतिक परंपरा भारत में पाई जाती है।

प्राचीन संस्कृतियों ने शिक्षा पर उच्च मूल्य रखा। भारत को दिया गया नाम 'विश्वगुरु' था। कई शिक्षाविदों ने शिक्षा का वर्णन करने के लिए रूपकों का उपयोग किया है, जिसमें प्रकाश का स्रोत, अंतर्दृष्टि, आंतरिक प्रकाश, ज्ञान नेत्र, तीसरी आँख आदि शामिल हैं। उस समय, यह माना जाता था कि शिक्षा व्यक्ति की सभी अनिश्चितताओं और अस्पष्टताओं को दूर करने का सबसे अच्छा तरीका है। जैसे प्रकाश अंधकार को दूर करता है। कहा जाता है कि शिक्षा प्राचीन काल में व्यक्ति को जीवन का सच्चा दृष्टिकोण प्रदान करती थी। और यह उसे अंत में मोक्ष पाने के लिए अस्तित्व के समुद्र में चुनौतियों से पार पाने की क्षमता देता है, जो कि मानव जीवन है।

ऋग्वेद में प्राचीन भारत में स्कूली शिक्षा का पहला प्रमाण है। ऋग्वैदिक

शिक्षा का मुख्य केन्द्र बिन्दु आत्मज्ञान था। विप्र, वैघ, कवि, मुनि और मनीषी के नाम से जाने जाने वाले ऋषियों ने ब्रह्मचर्य, उपवास और योग के माध्यम से तत्त्व की खोज की। तत्त्व मन्त्रों के रूप में वैदिक संहिताओं में एकत्रित होते रहे, जिनका स्वाध्याय, सांगोपांग अध्ययन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन वैदिक शिक्षा होते रहे।

विद्यालयों के नामों में गुरुकुल, आचार्यकुल, गुरुगृह आदि शामिल थे। गुरुसेवा का एक छात्र और ब्रह्मचर्य व्रतधारी एक आचार्य के परिवार में रहते हुए षडंग वेद का अध्ययन करते थे। छात्र के नाम में ब्रह्मचारी, व्रतधारी, अंतेवासी और आचार्यकुलवासी शामिल थे, जबकि शिक्षक के नाम में 'आचार्य' और 'गुरु' शामिल थे। सभी छात्रों के लिए, ब्रह्मचर्य अनुपालन आवश्यक था। इसे महिलाओं के लिए भी जरूरी माना जाता था। सदा ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले शिष्य को नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में जाना जाता था। ऐसी शिष्या को ब्रह्मवादिनी के नाम से जाना जाता था। प्राचीन भारत में कोई परीक्षा या उपाधि प्रदान नहीं की जाती थी। नित्य प्रवचन देने से पहले आचार्य यह जाँच करते थे कि क्या ब्रह्मचारी ने सिखाए हुए षष्ठ को समझ लिया है और उसे दिशा-निर्देशों के अनुसार आचरण में लाया है।

सीखने के केंद्रों में काशी, तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, ओदंतपुरी, जगद्दल, नदिया, मिथिला, प्रयाग, अयोध्या आदि शामिल थे। दक्षिण भारत के तिरुवोरियूर के प्रसिद्ध विद्यालयों में एन्नारियम, सलौतगी, तिरुमुक्कदल और मलकापुरम थे। अग्रहार दशकों तक शिक्षा का प्रचार और प्रसार करते रहे। कादीपुर और सर्वज्ञपुर अग्रहार विशिष्ट शैक्षणिक संस्थान थे। शिक्षा कथा, नाटक आदि के माध्यम से संपन्न होती थी। किसी भी विषय की गहराई से खोजबीन करने के लिए पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की विधियाँ अत्यधिक सहायक थीं। एक विषय विशेष रूप से छात्रों को विभिन्न चरणों में संकेंद्रित पद्धति का उपयोग करके पढ़ाया गया था। सूत्र, वृति, भाष्य और वार्तिक सभी ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया। इस अभ्यास के लिए, एक पाठ के बड़े और छोटे संस्करणों को सहायक माना जाता था। बौद्ध और जैन दोनों में समान शैक्षिक प्रणालियाँ हैं।

यूरोपीय ईसाई मिशनरियों और व्यापारियों ने भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव रखी। उन्होंने अनेक विद्यालयों की स्थापना की। उनका प्राथमिक कार्य स्थान मद्रास था। बंगाल में भी धीरे-धीरे कार्य के क्षेत्र में विस्तार दिखाई देने लगा। ईसाई धर्म पढ़ाने के साथ-साथ इन स्कूलों में इतिहास, भूगोल, व्याकरण, बीजगणित, साहित्य और अन्य विषयों को भी पढ़ाया जाता था।

सीखने का महत्त्व उस सीखने को वास्तविक दुनिया में लागू करने में है। सीखने का मूलभूत यह है। किसी व्यक्ति में मूल्यों को स्थापित करने की प्रक्रिया को शिक्षा कहा जाता है। यहीं पर भारतीयता केन्द्रित है। एक समान पाठ्यक्रम होने के बजाय इसे छात्रों की आवश्यकताओं, रुचियों, कौशल, ग्रहणशीलता, धारण शक्ति आदि के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। इसकी नींव के रूप में आचार्य- मान्यता प्राप्त भारतीय संस्कृति होनी चाहिए। इसका मूलभूत घटक ज्ञान-विज्ञान है जो आध्यात्मिक रूप से स्थापित है। कई शैक्षिक पहलों की नींव भारतीय मूल्य परंपरा को माना जाना चाहिए।

रविवार को स्कूल बंद रहता था। शिक्षकों को अक्सर छात्रों को विभिन्न विषयों में अध्ययन करने की आवश्यकता होती है।

व्यापारिक ईस्ट इंडिया कंपनी लगभग 150 साल बाद सत्ता में आई। विकास बाधित होने के डर से, कंपनी शिक्षा के प्रति उदासीन रही। हालाँकि, कंपनी ने 1781 में कलकत्ता में ''कलकत्ता मदरसा'' की स्थापना की और जोनाथन डंकन ने 1792 में बनारस में 'संस्कृत कॉलेज' की स्थापना की, प्रत्येक एक विशिष्ट कारण और लक्ष्य के लिए। धार्मिक प्रचार पर व्यापार की पिछली नीति बदलने लगी। 1813 के आदेश ने स्थापित किया कि धन शिक्षा के लिए आवंटित किया जाएगा, 1835 में लॉर्ड मैकाले के तर्कों और राजाराम मोहन राय द्वारा अंग्रेजी भाषा और साहित्य के साथ-साथ यूरोपीय इतिहास, विज्ञान और अन्य विषयों का अध्ययन करने के प्रोत्साहन से अंततः लॉर्ड बेंटिंक राजी हो गए। महिलाओं की स्थिति को बेहतर करने और उनकी शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए, ज्योतिबा फुले ने 1848 में एक स्कूल की स्थापना की। यह देश में अपनी तरह का पहला संस्थान था। उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को इस रोजगार के लिए योग्य बनाया और ट्यूटर न मिलने पर कुछ दिनों तक स्वयं ही लड़कियों को पढ़ाया। उच्च वर्ग ने शुरू में उनके काम में बाधा डालने का प्रयास किया, लेकिन जब फुले ने जोर दिया, तो उन्होंने अपने पिता पर पति और पत्नी को हटाने के लिए दबाव डाला, जिससे अस्थायी रूप से उनका काम रुक गया।

1882 में भारतीय शिक्षा आयोग की स्थापना की गई थी। प्राथमिक शिक्षा के लिए आयोग ने उचित सिफारिशें कीं। यह सलाह दी जाती है कि सरकारी प्रयासों को माध्यमिक शिक्षा से प्रारंभिक शिक्षा प्रशासन की ओर पुनर्निर्देशित

किया जाए। प्रत्येक जिले में सरकारी माध्यमिक विद्यालय होना चाहिए और माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होना चाहिए। आयोग ने माध्यमिक शिक्षा को बढ़ाने और करियर- केंद्रित कार्यक्रमों के विस्तार के लिए सुझाव दिए। इसके अतिरिक्त, आयोग सहायता अनुदान प्रथाओं और सरकारी शिक्षा विभाग में सुधार के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा, महिला शिक्षा, मुस्लिम शिक्षा आदि पर प्रकाश डालता है।

भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई है। विश्वविद्यालयों के स्थापना वर्ष इस प्रकार हैं - 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और मैसूर विश्वविद्यालय, 1917 में पटना विश्वविद्यालय, 1918 में उस्मानिया विश्वविद्यालय, 1920 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और 1921 में लखनऊ और ढाका विश्वविद्यालय। व्यावहारिकता को शिक्षा में शामिल करने का प्रयास किया गया है। 1921 से नई शासन सुधार कानून के अनुसार, भारतीय मंत्री हर प्रांत में शिक्षा के प्रभारी थे।

आजादी के बाद, शिक्षा में बदलाव की पहल काफी हद तक भाषणों, किताबों या रिपोर्टों तक ही सीमित रही है। कार्यान्वयन प्रेरणा की कमी से ग्रस्त है। शिक्षा को भौतिक प्रगति के आधार पर नहीं देखा जा सकता है। इसका दुर्भाग्यपूर्ण नतीजा पर्यावरण प्रदूषण है। वह यह भी सोचता है कि भौतिकवाद को कभी भी अस्वीकार नहीं किया गया है। भारत के स्वर्णीम काल में हम सब प्रकार से समृद्ध थे, इसी कारण विदेशी आक्रमणकारी भारत को लूटने आए। हमारी उत्पत्ति आध्यात्मिक है, और उस आध्यात्मिकता की व्यावहारिक अभिव्यक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का संतुलित समन्वय था। एक व्यक्ति के चरित्र ने उस मानदंड के रूप में कार्य किया जिसके द्वारा उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया गया। भारतीय प्रगति के पीछे यही विचार रहा है। यही शिक्षा का उद्देश्य है।

पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन

पाठ्य पुस्तक शिक्षण का मूल साधन है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि शिक्षण काफी हद तक पाठ्यपुस्तकों पर आधारित है। शब्द 'पाठ्यपुस्तक' एक विषय पर संगठित ज्ञान के संग्रह को संदर्भित करता है जो एक स्थान पर एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित होता है। एक पाठ्यपुस्तक को 2005 के राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा द्वारा शिक्षण-अधिगम सामग्री के एक घटक के रूप में माना जाता है, और इसे एक सहायक सामग्री के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसका उपयोग छात्रों को पाठ, विचारों, वस्तुओं, पर्यावरण के साथ सक्रिय रूप से बातचीत करने में सक्षम बनाने के लिए किया जाता है। और यह बातचीत छात्रों की अपनी समझ को जोड़ती है और विकसित करती है, न कि ''बच्चे के दिमाग को भरने के लिए ज्ञान के अंतिम उत्पाद'' के रूप में।

पाठ्यपुस्तक परिभाषा

यह स्वीकार करते हुए कि अधिकांश भारतीय कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों का बोलबाला है, छब्बर (2005) और लर्निंग विदाउट बर्डन 1953 ने यह विचार रखा कि पाठ्यपुस्तकें केवल ज्ञान का भंडार हैं जो शिक्षक अपने छात्रों को प्रदान करते हैं। पाठ्यपुस्तकों का शैक्षिक प्रणाली में वही स्थान है जो हमारे संबंधित धर्मों के पवित्र ग्रंथों का है। यह तर्क देना गलत नहीं होगा कि पाठ्यपुस्तक ही वह जगह है जहाँ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया शुरू और समाप्त होती है। यहाँ तक कि शिक्षक और छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों की योजना बनाना, अंतिम परीक्षा आदि सभी पाठ्यपुस्तक-केंद्रित हैं। पाठ्यपुस्तक की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रमुखता के परिणामस्वरूप एक उन्नत और आदर्श प्रोफ़ाइल है। पाठ्यपुस्तक द्वारा प्रस्तुत अधिकार को चुनौती देना अब कठिन है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020, के अनुसार प्रारंभिक बचपन की देखभाल और शिक्षा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का मतलब स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा है। प्रौढ़ शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफएई) और शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफटीई) शिक्षा मंत्रालय (एमओई) और एनसीईआरटी ने इस संबंध में एक व्यापक योजना तैयार की है। इस नीति के अनुसार, जिला स्तर की चर्चाओं का उपयोग सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को राज्य स्तर पर राज्य पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एससीएफ) बनाने में मदद करने के लिए किया जाएगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के अनुसार, पाठ्यपुस्तकों का निर्माण इस तरह से किया जाना चाहिए जो शिक्षकों और छात्रों दोनों को रचनात्मक प्रयासों में संलग्न होने के लिए प्रेरित करे। शिक्षकों या विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। लचीलेपन की नीति को लागू करने के लिए, पाठ्यपुस्तक बनाते समय इस तथ्य पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह यथासंभव विकेन्द्रीकृत हो और इसमें राज्य, जिला और ब्लॉक स्तर पर छात्रों के लिए प्रासंगिक गतिविधियाँ शामिल हों। पाठ्यपुस्तक में विषय वस्तु को तौलने के बजाय, सीखने और समझने के द्वारा सीखने पर जोर दें, और छात्रों को अपने स्वयं के अनुभवों के आधार पर समझने की क्षमता विकसित करने में सहायता करें।

पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन कई बिंदुओं पर निर्भर करता है। जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं -

सांस्कृतिक मूल्यों का विकास और इतिहास पुर्नलेखन की आवश्यकता

डॉ. मुकेश कुमार मीणा
सहायक प्रोफेसर,
अर्थशास्त्र विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

मानव सभ्यता के विकास के क्रम में ज्ञान की प्रारम्भ से ही प्रमुख भूमिका रही है। मानव ने जीवन में निरंतर सुधार के लिए अपने आसपास के पर्यावरण में उपलब्ध संसाधनों के बारे में जानने और समझने का निरंतर प्रयास किया है। आसपास के वातावरण की जानकारी ने संसाधनों को मानव जीवन के लिए उपयोगी बनाया है। मानव ने इस जानकारी का निरंतर अपने समाज को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण किया है इससे निरंतर मानवीय ज्ञान का विस्तार हुआ है। ज्ञान के उपयोग के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान हस्तान्तरण की परम्परा विभिन्न भारतीय समाजों की संस्कृति का हिस्सा रही है। भारतीय संस्कृति की अनौपचारिक ज्ञान हस्तान्तरण की परम्परा मानव जीवन के विभिन्न पर्यावरणीय भौगोलिक को सम्मिलित करती है। इस प्रकार परम्परागत ज्ञान भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। किसी भी देश और समाज को यदि अपना निरंतर अस्तित्व बनाये रखने के लिए अपने परम्परागत ज्ञान का संरक्षण करना आवश्यक है; लेकिन वर्तमान युग एक आर्थिक युग है इस आर्थिक युग में अनौपचारिक ज्ञान की तुलना में औपचारिक ज्ञान का महत्त्व लगातार बढ़ रहा है। औपचारिक ज्ञान आधुनिक व्यवहार का आधार है। इसमें अनौपचारिक रूप से हस्तांतरित होने वाले परम्परागत ज्ञान का महत्त्व लगातार कम होता जा रहा है। इसलिए अनौपचारिक ज्ञान के विषय में कुछ स्वाभाविक प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ना आवश्यक है; जैसे : ज्ञान क्या है? ज्ञान का उत्पादन कैसे होता है? ज्ञान उत्पादन कौन करेगा अर्थात् उसका वास्तविक अधिकारी कौन? ज्ञान के प्रयोग और व्याख्या के अधिकार किसके पास होंगे? ज्ञान का वितरण कैसे होगा? ज्ञान के वितरण की संस्थाएँ कौनसी होंगी? इत्यादि। जिससे परम्परागत अनौपचारिक स्रोतों से पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे ज्ञान को संरक्षित किया जा सके और इसे औपचारिक रूप में प्रयोग किया जा सके।

ज्ञान के उत्पादन के प्रमुख औपचारिक स्थानों में विश्वविद्यालय, शोध संस्थान, विभिन्न विभागीय समितियाँ, व्यक्तिगत शोध को सम्मिल्लित किया जा सकता है। जनसंचार के इलेक्ट्रोनिक एवं प्रिंट माध्यम, शैक्षिणिक संस्थान और विभिन्न

सरकारी गैर सरकारी आयोजन इनके प्रचार के साधन हैं अनौपचारिक संस्थानों में उत्पादन की क्रियाओं में परिवार, जाति स्थानीय पड़ोस, मित्र मंडली, सन्दर्भ समूह को सम्मिलित किया जाता है। एक सामाजिक इकाई के ज्ञान का एक बड़ा भाग इन संस्थाओं से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है।

अनौपचारिक संस्थानों में पारिवारिक-जातीय-धार्मिक और अन्य समाजीकरण की अंत:क्रियाओं के माध्यम से ये सामाजिक इकाइयों के व्यहवार में निरंतर सम्मिलित होता रहता है। इस अनौपचारिक ज्ञान के बड़े स्तर पर प्रसार जनसंचार के विभिन्न माध्यमों से किया जाता है। मीडिया, प्रशासन तथा सेंसर करने वाले इस ज्ञान के वितरण को नियंत्रण करते हैं। ये संसथान ज्ञान का उत्पादन और वितरण, उसकी प्रक्रिया और मापदंड को इस प्रकार निर्धारित करने का प्रयास करते हैं कि इनके माध्यम से उत्पन्न ज्ञान समाज के लिए उपयोगी हो सके।

आजकल विभिन औपचारिक और अनौपचारिक संस्थाओं के माध्यम से अत्यधिक साहित्य उत्पन्न किया जा रहा है। यह साहित्य एक सामान्य व्यक्ति के विचारों में इतना घुल मिल जाता है कि सामान्य व्यक्ति न तो इनसे अलग सोच सकता है; ना ही उसका विकल्प दे सकता है। अर्थात् सामान्य आदमी बने बनाये फ्रेम में सोचता है, और उसके अनुसार अपनी प्रतिक्रिया देता है। एक सामान्य व्यक्ति यह नहीं जानता कि विभिन्न विषयों के ज्ञान में क्या विभेद है। विभिन्न सामाजिक और मानविकी विषयों के साहित्य का निर्माण कैसे होता है। विभिन्न सामाजिक और मानविकी विषयों के साहित्य का निर्माण कैसे होता है; इस साहित्य को कितना तार्किक माना जा सकता है; साहित्य को तार्किक माप की कसौटियाँ क्या हैं; इस साहित्य में कितना विश्वास किया जाना चाहिए। इन साहित्यों की विषय वस्तु क्या है? इस विषय वस्तु को विश्लेषित करने का तरीका क्या है? इत्यादि।

परम्परागत ज्ञान के स्रोत के रूप में भारतीय इतिहास में सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों का समावेश किया जाना आवश्यक है। इसके साथ ही भोगोलिक वातावरण के प्रति आदर सम्मान से सम्बन्धित पक्षों को भी सामने लाने की आवश्यकता है। ये आजकल पर्यावरण चिन्तन का केंद्र बिंदु बने हुए हैं। राजनैतिक पक्षों का सामाजिक और संस्कृतिक पक्षों से समन्वय आवश्यक है; जो हमारे नागरिको के संवैधानिक मूल्यों के अनुसार व्यक्तित्व विकास में सहायक हो।

बिना संदर्भ को समझे, विभिन्न भाषाओं के स्थानीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से एक बड़ा साहित्य सामान्य जन के सामने जन संचार के माध्यम से सामने आ रहा है जिसे सामान्य जन बिना अपनी आवश्यकता और संस्कृति के ग्रहण कर रहा है ऐसा साहित्य सामान्य जन जीवन में विभिन्न समस्या उत्पन्न कर रहा है। इन नई परिस्थितियों में नये उत्पन्न किये जाने वाले ज्ञान को अपनी आवश्यकता की कसौटियों पर मूल्यांकित करने के लिए परम्परागत ज्ञान का बहुत महत्त्व है।

परम्परागत ज्ञान का संरक्षण करने के लिए हमें प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के तथ्यों का संकलन करना आवश्यक है जो इतिहास की विषय वस्तु है। भारत में इतिहास लेखन की परम्परा आधुनिक काल में शुरू हुयी, भारतीय परम्परा में विभिन्न तरह के नाटक, काव्य संस्मरण कथाएँ तथा चर्चाओं का विवरण है, जिनके आधार पर इतिहास लेखन किया जा सकता है आधुनिक काल में भारत अंग्रेजों का गुलाम रहा है जिनके समय में इतिहास लेखन शुरू किया गया। अंग्रेजी काल में किये गये इतिहास लेखन का उद्देश्य भारतीय

संस्कृति को गुलाम संस्कृति के रूप में पेश करना था। अंग्रेजी काल के इतिहासकारों के इस उद्देश्य से पेश किये गये तथ्यों से भारतीय संस्कृति की वास्तविक तस्वीर सामने नहीं आ सकी। इससे भारतीय भाषाओं में लिखे गये साहित्य का वास्तविक रूप पेश नहीं हो पाया। इसलिए भारतीय इतिहास एक अच्छे नागरिक के विकास के लिए आवश्यक मूल्यों को विकसित करने में प्रभावी भूमिका निभाने के लिए आवश्यक तथ्य सामने लाने में असफल रहा।

नई शिक्षा नीति – 2020 के उद्देश्यों में औपचारिक शिक्षा को व्यावहारिक, उद्देश्यपरक और स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप बनाने के लिए विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं व्याहवारिक, उद्देश्यपरक और स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा को तैयार करने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों को इंटर डिसीप्लेनरी, इन्ट्रा डिसीप्लेनरी, ट्रांस डिसीप्लेनरी बनाने का प्रयास किया जा रहा है, जो विद्यार्थियों के बहुमुखी विकास और शिक्षा को रोजगार परक बनाने के लिए आवश्यक है भारतीय परम्परागत ज्ञान के स्रोतों में स्थानीय संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, प्रशासन के साहित्य का विभिन्न कथा, कहानियों, काव्य, संस्मरण के माध्यम से वर्णन किया गया है। परम्परागत साहित्य की विषय वस्तु को किसी एक विषय के अंतर्गत नही बांधा जा सकता है; इसलिए परम्परागत साहित्य के कारण परिणाम संबंध, वर्तमान के सामाजिक मानविकी विषयों से अलग हो सकते हैं।

परम्परागत साहित्य की विषय वस्तु में बहुत सी कल्पनाओं, भावनाओं का समावेश होता है; जो मानवीय व्यहवार की स्थानीय संस्कृति के अनुसार स्वाभाविकता है जिनके तथ्य मनोविज्ञान और समाजशास्त्र विषयों की विषय वस्तु है। इसी प्रकार प्रशासन से सम्बन्धित तथ्य राजनीति विज्ञान की विषय वस्तु है। जिनको विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से समझाया गया है; ये परम्परागत ज्ञान सामूहिक रूप से बिना किसी विभाजन के उपलब्ध है। अगर आप ज्ञान को विभिन्न पद्धति के आधार पर भागों में विभाजित करते हो तो, इनमें परस्पर सम्बन्ध की समस्या उत्पन्न होगी। जिसका समाधान करना संभव नहीं है। इसलिए पद्धति आधारित विभाजन के स्थान पर विषय से सम्बन्धित सभी पक्षों का ज्ञान अधिक व्यावहारिक कहा जा सकता है। सांस्कृतिक निर्धारणवाद के अनुसार संस्कृति अर्थव्यवस्था के मांग और पूर्ति पक्षों को प्रभावित करती है। इसलिए किसी सामाजिक समूह के व्यवहार का आर्थिक व्यवहार से समग्र सामंजस्य ही सतत विकास को संभव बनाता है। सामाजिक और आर्थिक पक्षों में समन्वय के अभाव में संतुलित विकास संभव नहीं है।

परम्परागत ज्ञान के स्रोत के रूप में भारतीय इतिहास में सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों का समावेश किया जाना आवश्यक है। इसके साथ ही भौगोलिक वातावरण के प्रति आदर सम्मान से सम्बन्धित पक्षों को भी सामने लाने की आवश्यकता है। ये आजकल पर्यावरण चिन्तन का केंद्र बिंदु बने हुए हैं। राजनैतिक पक्षों का सामाजिक और संस्कृतिक पक्षों से समन्वय आवश्यक है; जो हमारे नागरिकों के संवैधानिक मूल्यों के अनुसार व्यक्तित्व विकास में सहायक हो। इसलिए आजादी के बाद संवैधानिक मूल्यों को ध्यान में रखकर इतिहास का पुनर्लेखन आवश्यक है। ❑

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में लोकभाषाओं में शिक्षा

अनामिका यादव
पी-एच.डी शोधार्थी
(शिक्षाशास्त्र)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय
हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा (महाराष्ट्र)

यह बात बहुत ही स्पष्ट है कि एक व्यक्ति या बालक अपने भावों की अभिव्यक्ति जितनी अच्छी तरह से अपनी मातृभाषा में कर सकता है किसी अन्य भाषा में उस भाव को अभिव्यक्त करना अपेक्षाकृत कठिन और असहज होता है क्योंकि भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है। इसलिए आवश्यक है शिक्षा प्रदान करने की भाषा स्थानीय भाषा या लोक भाषा हो, जिससे अधिक से अधिक लोग शिक्षा से जुड़ाव महसूस कर सकें। इसी बात को ध्यान में रखते हुए यदि शिक्षा को स्थानीय भाषा या लोक भाषा में प्रदान किया जाये तो शिक्षा की पहुँच सभी तक असानी से हो सकेगी और लोग शिक्षा से अधिक जुड़ाव महसूस कर सकेंगे, क्योंकि भाषा और समाज को एक दूसरे का पूरक माना जाता है और समाज बिना शिक्षा के विकास करने में असमर्थ है। शिक्षा और भाषा में विशेष संबंध है क्योंकि भाषा मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण, ज्ञान प्राप्ति, विचार-विनिमय तथा चिंतन व मनन के साधन के रूप में मानी जाती है। भाषा राष्ट्र, साहित्य, कला, संस्कृति व सभ्यता के विकास की धुरी है। मातृभाषा या लोकभाषा में दी गयी शिक्षा बालक असानी से सीखने में सक्षम होता है और अधिकतर शिक्षाविद एवं भाषा वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम मातृभाषा/ लोकभाषा/ स्थानीय भाषा हो सकती है। उनकी मान्यता है कि जितनी सरलता और स्वाभाविकता से मातृभाषा या लोकभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जा सकती है किसी अन्य भाषा से करना उतना सरल नहीं है क्योंकि अन्य भाषाओं के माध्यम से भिन्न-भिन्न विषयों को सीखने में अधिक समय और अधिक मानसिक शक्ति लगानी पड़ती है जबकि मातृभाषा/लोकभाषा में सिखाये गये विषयों को बालक सरलता एवं सहजता से स्थायी रूप से अर्जित करते हैं। भाषा वैज्ञानिक चोमस्की ने बताया कि व्यक्ति में भाषिक क्षमता जन्मजात होती है अन्यथा भाषिक व्यवस्था को सीखने की प्रक्रिया संभव नहीं होती, अत: यह कहा जा सकता है कि लोक भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा को व्यक्ति सीख तो सकता है लेकिन सहजता के साथ शिक्षा प्राप्त करना संभव नहीं हो पाता है। यदि ज्यां पियाजे के तथ्य को देखा जाये तो भाषा अन्य संज्ञानात्मक तंत्रों की भांति परिवेश के साथ अंत:क्रिया के माध्यम से ही विकसित होती है और दूसरी ओर व्यागात्स्की के अनुसार बालक की भाषा समाज के साथ संपर्क का ही परिणाम है अत: यह कहा जा सकता है कि भाषा बच्चे के संपूर्ण विकास में सहायक है इसलिए राष्ट्र भाषा हिंदी और विदेशी भाषा अंग्रेजी में शिक्षा देने के बजाय लोकभाषा या

स्थानीय भाषा में शिक्षा प्रदान करना उचित होगा जिससे बच्चे का संपूर्ण विकास हो सके। यहाँ लोकभाषा से क्या आशय है पहले यह समझ लेना उचित होगा।

लोकभाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो लोक मानस द्वारा निर्मित है और लोक प्रवृत्ति के अनुरूप ढलती रही है। इसकी कोई वैयाकरणिक, निरुक्ति या उत्पत्ति सिद्ध नहीं की जा सकती है केवल लोक मानस में उसे ढूँढ़ा जा सकता है। लोकभाषा के अंतर्गत देशज शब्दों के अतिरिक्त तद्भव शब्द भी आते हैं क्योंकि इनके निर्माण में लोक प्रवृत्ति ही कार्य करती है जैसे अंग्रेजी का 'लार्ड' शब्द लोक में आकर घिसते-घिसते 'लाट' बन गया। इस प्रकार अंग्रेजी के कुछ शब्द लोकभाषा में इतने प्रचलित हो गये हैं कि उनकी अपनी मूल भाषा खो गयी है और वह विकृत रूप में लोगों के मध्य लोकभाषा के रूप में प्रयोग किये जा रहे हैं। अब यदि बाल काल से ही लोकभाषा बोलने वाला बालक अचानक किसी अन्य भाषा में शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास करेगा तो उसे कठिनाई महसूस होगी। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी भाषा के महत्त्व को समझते हुए विशेष स्थान प्रदान किया गया है जैसे पैरा 22.4 में कहा गया है कि भाषा नि:संदेह कला एवं संस्कृति को अटूट रूप से जोड़ती है। विभिन्न भाषाएँ दुनिया को भिन्न तरीके से देखती हैं इसलिए मूल रूप से किसी भाषा को बोलने वाला व्यक्ति अपने अनुभवों को कैसे समझता है या उसे किस प्रकार से ग्रहण करता है यह उस भाषा की संरचना से तय होता है। विशेष रूप से किसी संस्कृति के लोगों का दूसरों के साथ बात करना जैसे परिवार के सदस्यों, प्राधिकारों प्राप्त व्यक्तियों, समकक्षों, अपरिचित आदि भाषा से प्रभावित होता है तथा बातचीत के तौर तरीके को भी प्रभावित करती है। हम यह कह सकते हैं कि अनुभवों की समझ और एक ही भाषा के व्यक्तियों की बातचीत में अपनापन, यह सभी ही संस्कृति का प्रतिबिम्ब है अत: संस्कृति हमारी भाषाओं में समाहित है। साहित्य, नाटक, संगीत फिल्म आदि के रूप में कला की पूरी तरह सराहना करना बिना भाषा के संभव नहीं है। संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए हमें उस संस्कृति की भाषाओं का संरक्षण और संवर्धन करना होगा और भाषाओं के संरक्षण के लिए आवश्यक है कि शिक्षा में लोकभाषा अथवा स्थानीय भाषा को महत्त्व दिया जाए। भारतीय भाषाओं के शिक्षण और अधिगम को विद्यालय और उच्चतर शिक्षा के प्रत्येक स्तर के साथ एकीकृत करने की आवश्यकता है। भाषाएँ/लोकभाषाएँ प्रासंगिक और जीवंत बनी रहें इसके लिए भाषाओं के शब्दकोशों और शब्द भंडार को आधिकारिक रूप से लगातार अद्यतन होते रहना चाहिए ताकि विद्यार्थी एवं शिक्षक उस भाषा में बातचीत और अंत:क्रिया करने की क्षमता पर केंद्रित हो न कि केवल भाषा के साहित्य, शब्द भंडार और व्याकरण पर केंद्रित हों। सभी विद्यालयी स्तर पर बहुभाषिकता को प्रोत्साहित करने के लिए त्रिभाषा सूत्र के क्रियान्वयन को जल्दी लागू करने के साथ ही जब भी संभव हो लोकभाषा भाषा में शिक्षण तथा अधिक अनुभव आधारित भाषा शिक्षण हेतु अन्य विशेषज्ञों को स्थानीय विशेषज्ञता के विभिन्न विषयों में विशिष्ट प्रशिक्षक के रूप में विद्यालय से जोड़ने का भी प्रावधान किया जाना चाहिए जिससे अधिक से अधिक शिक्षक स्थानीय अथवा लोकभाषा से परिचित हो सकें और कक्षा शिक्षण के दौरान अधिकतम स्थानीय अथवा लोकभाषा का प्रयोग करें जिससे कक्षा में विद्यार्थी अधिक जुड़ाव महसूस कर सकेंगे और विद्यार्थी एक आदर्श संतुलन कायम रखते हुए अपने लिए उचित पाठ्यक्रम का चुनाव कर सकें और सृजनात्मक, कलात्मक, सांस्कृतिक एवं अकादमिक आयामों का विकास कर सकने में सक्षम हो सकेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के पैरा 22.10 में यह भी कहा गया कि अधिक उच्चतर शिक्षण संस्थानों तथा उच्चतर शिक्षा के और अधिक कार्यक्रमों में मातृभाषा/ स्थानीय भाषा/लोकभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग किया जायेगा और कार्यक्रमों को द्विभाषीय रूप में चलाया जायेगा ताकि विद्यालय तक सभी की पहुँच एवं सकल नामांकन अनुपात दोनों में बढ़ोत्तरी हो सके। मातृभाषा/स्थानीय भाषा अथवा लोकभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग और द्विभाषीय रूप में कार्यक्रम को संचालित करने के लिए निजी प्रशिक्षण संस्थानों को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकभाषा/स्थानीय भाषा का महत्व न सिर्फ सामान्य जन-जीवन में है अपितु शिक्षा और संस्कृति के संवर्धन में भी लोकभाषा का महत्त्व है जिसको ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी भाषा और संस्कृति के विषय में पैरा 22 में विस्तार से चर्चा की है। अत: हम कह सकते हैं कि शिक्षा में संस्कृति और भाषा (मातृभाषा/स्थानीय भाषा/लोकभाषा) का विशेष महत्त्व है।❑

शिक्षा और भाषा में विशेष संबंध है क्योंकि भाषा मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण, ज्ञान प्राप्ति, विचार-विनिमय तथा चिंतन व मनन के साधन के रूप में मानी जाती है। भाषा राष्ट्र, साहित्य, कला, संस्कृति व सभ्यता के विकास की धूरी है। भाषा वैज्ञानिक चोमस्की ने बताया कि व्यक्ति में भाषिक क्षमता जन्मजात होती है अन्यथा भाषिक व्यवस्था को सीखने की प्रक्रिया संभव नहीं होती, अत: यह कहा जा सकता है कि लोक भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा को व्यक्ति सीख तो सकता है लेकिन सहजता के साथ शिक्षा प्राप्त करना संभव नहीं हो पाता है।

1. शिक्षा का उद्देश्य – शिक्षा का मुख्य लक्ष्य ज्ञान की अवधारणा को पूरा करना, राष्ट्रीय आदर्शों और मूल्यों को विरासत के रूप में बनाए रखना, उन्हें पूरे समाज में फैलाना और लोगों को उनके सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करना है। पाठ्य पुस्तक में प्रदान की गई शिक्षण गतिविधियाँ छात्रों को राष्ट्रीय मूल्यों और आदर्शों को विकसित करने में मदद कर सकती हैं क्योंकि यह पाठ्यक्रम का प्रतिबिंब है। पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन सामाजिक महत्त्वाकांक्षाओं, राष्ट्रीय आदर्शों और स्वयं के विकास के आलोक में होना चाहिए। पाठ्यपुस्तक का विश्लेषण करते समय इन दोनों स्तरों के उद्देश्यों की पूर्ति हुई या नहीं, इस पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि शिक्षण के स्तर और विषय के अनुसार शैक्षिक लक्ष्य भी स्थापित किए जाते हैं।

2. विषय वस्तु की संरचना और प्रस्तुति – पाठ्यपुस्तक की संरचना और प्रस्तुति विषय वस्तु के अनुरूप होती है। क्योंकि भाषा और विज्ञान की प्रकृति एक दूसरे से अलग है, भाषा से जुड़ी पाठ्यपुस्तक की संरचना और प्रस्तुति विज्ञान से संबंधित पाठ्यपुस्तक से पूरी तरह अलग होगी। भाषा की पाठ्यपुस्तक की रूपरेखा और प्रस्तुति में छात्रों की भाषाई क्षमताओं के विकास को प्राथमिकता दी जाएगी, जबकि विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में छात्रों के व्यावहारिक कौशल के विकास को प्राथमिकता दी जाएगी।

3. बच्चे का मानसिक विकास – पाठ्यपुस्तक को मुख्य रूप से बच्चे के मानसिक विकास के स्तर के आधार पर संरचित किया जाना चाहिए, और पाठ्यपुस्तक की विषय वस्तु को उस स्तर के अनुरूप चुना जाना चाहिए। यह सुझाव देना गलत नहीं होगा कि स्कूली पाठ्यपुस्तक को छात्रों के मानसिक विकास में सहायता करनी चाहिए और

ठोस-अमूर्त सोच के उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों को बच्चों के रचनात्मक और बौद्धिक विकास के लिए बीज के रूप में काम करना चाहिए। इसके अलावा, भाषा प्रवीणता, सामाजिक परिपक्वता, शारीरिक दक्षता आदि के विकास के लिए पाठ्यपुस्तकें महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं।

4. लेआउट और डिज़ाइन – मूल्यांकन का एक प्रमुख घटक पाठ्यपुस्तक की संरचना और डिज़ाइन है। 'डिजाइन और संरचना' से हमारा तात्पर्य पाठ्यपुस्तक की संगठनात्मक योजना से है। पाठ्यपुस्तक की संरचना में इसके आकार, वजन और प्रिंट अक्षरों जैसी चीजें शामिल हैं। शिक्षक को इस तथ्य पर पूरा ध्यान देना चाहिए कि जब वह पुस्तक की जाँच करता/करती है तो पाठ्यपुस्तक अत्यंत विस्तृत होती है। यह हल्का होना चाहिए, छपाई सुंदर होनी चाहिए, पत्र छात्रों की उम्र के लिए उपयुक्त होने चाहिए, और विद्यार्थियों के लिए किसी भी कठिनाई को रोकने के लिए आकार मानक होना चाहिए।

5. मानसिक स्तर का विकास – विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के आधार पर विषय वस्तु का विश्लेषण करना चाहिए। मानसिक स्तर से अभिप्राय यह है कि जो विषय वस्तु छात्रों की मानसिक क्षमता के अनुरूप हो या उन्हें समझने में कठिनाई न हो, उन्हें पाठ्यपुस्तक में शामिल किया जाना चाहिए।

6. उपयुक्त भाषा और शैली – एक अच्छी पाठ्यपुस्तक हमेशा अपने पाठकों को उपयुक्त भाषा और शैली में विचार और सामग्री देती है। पाठ्यपुस्तकों में भाषा और लेखन शैली छात्रों की उम्र, मानसिक स्तर और रुचि के अनुसार होनी चाहिए। यदि पाठ्यपुस्तक छोटी कक्षाओं के लिए है तो उसे कहानी, वार्ता, कार्टून आदि के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

7. शिक्षा में भारतीयता – सीखने का महत्त्व उस सीखने को वास्तविक दुनिया में लागू करने में है। सीखने का मूलभूत आधार यह है। किसी व्यक्ति में मूल्यों को स्थापित करने की प्रक्रिया को शिक्षा कहा जाता है। यहीं पर भारतीयता केन्द्रित है। एक समान पाठ्यक्रम होने के बजाय इसे छात्रों की आवश्यकताओं, रुचियों, कौशल, ग्रहणशीलता, धारण शक्ति आदि के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। इसकी नींव के रूप में आचार्य-मान्यता प्राप्त भारतीय संस्कृति होनी चाहिए। इसका मूलभूत घटक ज्ञान-विज्ञान है जो आध्यात्मिक रूप से स्थापित है। कई शैक्षिक पहलों की नींव भारतीय मूल्य परंपरा को माना जाना चाहिए। ❑

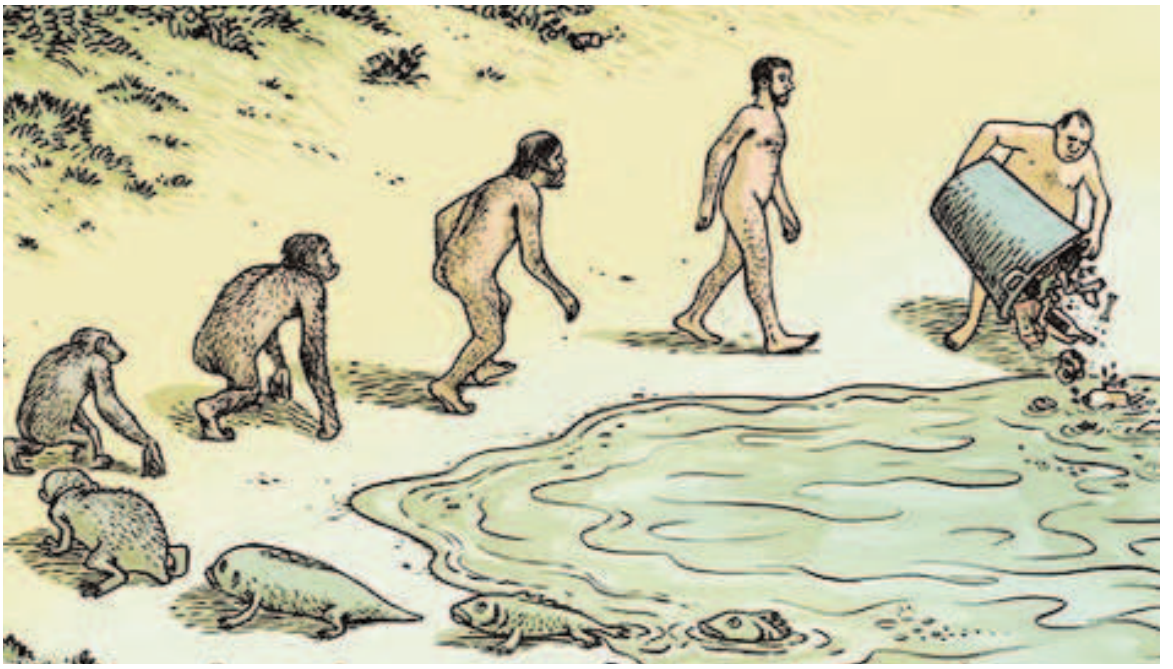

Time to Teach Intelligent Design Theory

Prof. Bhagwati Prakash Sharma

President, UNESCO Mahatma Gandhi Institute of Education for Peace and Sustainable Development (UNESCO-MGIEP)

Darwinian theory of evolution of species appears to be losing validity after the advent new scientific theory of intelligent design in the living species and even the whole universe. One and half century old hypothesis of Darwin about the evolution of living species through an undirected process of natural selection based upon random forces loosing ground. It is well evident from new scientific researches that from the primitive organisms like bacteria to the humans and giant blue whales all the living species, including plants have a perfect and intelligent design, fine tuned to their respective requirements. Hundreds of thousand of elements of intellvgent design in all the living species, with all their systems, tissues (if any) and the cells have highly purposeful complexity, which cannot be a result of an undirected and random process without an intelligent and teleological plan or design.

Even a single meaningful para cannot be, composed without intelligently making words, sentences with proper punctuation.

More Scientific Than Darwin's Hypotheses :

Intelligent design theory has been bringing out countless and ever newer scientific revealations in support of an intelligent design in every living specie that the one and half century old Darwinian theory of evolution is bound to lose its validity. Darwin's theory of evolution of living species, through undirected natural selection might soon loose ground for this newer scientific theory based upon the intelligent design in the universe as well as living species. This new theory proves with evidence that the physical worlds as well as the species on the earth are intelligently designed, instead of being evolved though an undirected natural selection and random combinations. This debate has evolved in the US in the 1990's and soon spread in Europe as well and has now been gaining wide support in the scientific community, based

upon advanced researches.

Perfection in Design and Coordination: Beyond Interplay of Random Natural Forces :

A well planned and perfect design with utmost coordination is visible in the whole universe around us as well as in every living being. This intelligent design, visible in cosmos and living world is being briefly stated hereunder:

(i) Intelligent Design in Primitive Organisms Like Bacteria :

Even the bacterial flagellum is one of the nature's most amazing and well-designed nano machines. Its cell-wall-anchored motor uses chemical energy to rotate a microns-long filament and propel the bacterium towards nutrients and away from toxins. The flagellar motor depends upon the coordinated function of 30 protein parts. Yet the absence of any one of these parts results in the complete loss of motor function. Remove one of the necessary proteins (as scientists can do experimentally) and the rotary function would cease.

(ii) Design in each cell, its atoms and complete organism : Intelligent design is reflected not only in the living species as they exist and operate, but the design miracle of every cell of these species is also quite marvelous in vividly illuminating the evidence that the elements of life were selected and exquisitely fine-tuned by a master intellect, and had to be before the first cell could exist. Michael Dentor has authored a book entitled "The Miracle of the Cell" to explain this intelligent design.

This marvel of fine tuning in the anatomy, physiology and biochemistry of every living being would become explicitly clear with a study of how intelligently the eye is designed, not possible by a blind random combination of elements?

(iii) Examples of Intelligent Design in Humen Eye :

Human eye too can be taken as an example of intelligent design Otangelo in his article'How the origin of the human eye is best explained through intelligent design has well explained the attributes of intelligent design. A brief of it is being mentioned hereunder:

(a) Intelligence in the Design of Human Eye : The human eye according to Ontangelo, consists of over two million working parts making it second only to the brain in complexity. Proponents of Darwinian evolution believe that the human eye is a product of millions of years of mutations and natural selection. As one reads about the amazing complexity of the eye then, could this really be a product of evolution? Have a deeper view of the design in automatic focus and the visual system

From this above premise the proponents of intelligent design theory emphatically infer that no such system could have come about through the gradual alteration of functioning precursor systems by means of random mutation and undirected Natural Selection as the standard evolutionary believers claim. Therefore, living organisms must have been created all concurrently with a directed intelligent design. To some it may be even by an intelligent designer.

(b) Automated focus of eye a perfect intelligent design : The lens of the eye is suspended in its position by hundreds of string like fibres called Zonules. The ciliary muscle changes the shape of the lens. It relaxes to flatten the lens for distance vision; for close look it contracts rounding out the lens. This happens automatically and instantaneously without you having to think about it. It cannot arise out of randomness

(iv) Evidence of Intelligent Design in the Universe : As already stated above, the universe is also perfectly fine tuned which has more than 2 trillion galaxies. Each of these galaxies have more than 100 billion stars with 400-500 billion planets have a delicate and fine tuned and well coordinated, each of which revolve round their respective stars. Like we have our sun and earth, mars, mercury etc. eight of its planets, which revolve round the sun in our solar system. These planets also have their moon like satellites. All of these balance in the

gravity, mass and velocity of each of the heavenly bodies with respect to each other. Each of this planet is revolving round its respective star, and in turn even each of the star is also revolving in its orbit around a super- massive black hole or so.

Intelligent Design in Every Living Organism :

Like the above example of human eye and Right from the birth to end of each plant and animal has common attributes of each specie and perfect uniformity with a fine tuning of each of its system, which is the best evidence of a teleological intelligent design. This leds us to a conclusion that every living being, its system, tissues, cells and atoms constituting each cell has a purposefully planned design and attributes.

Commonly Visible Arguments Supporting Intelligent Design

The proponents of Intelligent Design theory, or theory of Creationism advance 3 simple arguments along with advancing hundreds of explanations in favor of an intelligent design. They say that the irreducible complexity, purposefully designed and specificity with a fine tune in everything proves an intelligent design. These three arguments are:

(i) Irreducible complexity in the cosmos as well as in all living beings : There is an ultimate complexity in everything from the galaxies to smallest organs of living species, and all these systems are bound to collapse on elimination of a minor component of the system. This indicates that the complexity in each of them is planned or intelligently designed and not result of a random combination. The biochemist, Michael Behe in his 1996 book, Darwin's Black Box. defines it as "a single system which is composed of several well-matched interacting parts wherein the removal of any one of the parts causes the system cease functioning." Intelligent design proponents argue that undirected natural selection cannot create irreducibly complex systems, because the selectable function or component is present only when all parts are preplanned and then assembled. From amoeba to an elephant, from the eye of a cockroach to the eye of a human being, every where there is an irreducible complexity. Irreducible complexity has remained a popular argument among advocates of intelligent design.

(ii) Specified complexity : The aforesaid complexity in every cosmic component and living beings is not random but deliberate, which indicates that the complexity is planned or designed intelligently or purposefully. In 1986, Charles B. Thaxton, a physical chemist and creationist, used the term "specified complexity" while claiming that messages transmitted by DNA in the cell were specified by intelligence, which must have originated with an intelligent agent.

(iii) Fine-tuned Universe : The believers in intelligent design theory also argue that everything in the cosmos from galaxies to the single atom and from whale to all micro-organisms, everything is so ideally fine turned that if cannot work without this fine tuning or adjustment and coordination. This fine tuning cannot be brought without purposeful intelligence.

Rationale to include This Theory in Curriculum :

From this above premise the proponents of intelligent design theory emphatically infer that no such system could have come about through the gradual alteration of functioning precursor systems by means of random mutation and undirected Natural Selection as the standard evolutionary believers claim. Therefore, living organisms must have been created all concurrently with a directed intelligent design. To some it may be even by an intelligent designer. This designer according to theologists may be or is the God. But another group of proponents of intelligent design theory stay away from claiming it to be the designer or the God. Whether one accepts the role of the designer or not, but intelligent design in the universe as well as each living being, its tissues cells and genetic material is visible everywhere. It is high time that this intelligent design be taught and included in text books. Even George W. Bush the former America President is of this view. ❑

Need to Recreate History : School Textbooks

Dr. T.S. Girishkumar
Professor of
Philosophy (Rtd.)
MSU Baroda
(Gujarat)

School text books, especially of humanities shall really be very significant in the making of meaningful citizens of any Nation. Any Nation shall have a culture of its own; and such Nation culture shall constitute an identity of the nation's citizens in a most natural manner. It is true that the fundamentals of culture go into the next generations from their families, but a systematic imparting of such noble teachings should go through schools where the children really learn to learn. Children shall learn through lives of great people who lived earlier, some such stories etc, but then, a structured and tailored text book has no substitute at all, under all circumstances. Hence the serious importance of text books for schools, and a meticulously programmed curriculum. This ideal situation presupposes that the Nation culture is not adulterated through unhealthy influences from without, hegemonies from aliens and indeed, invasions of long-lasting character from without.

Bharatiya situation

The Bharatiya situation in this regard is not only complex, but also is complicated. Bharat is unique from other nations in many ways. Unlike most other nations, the identity of Bharat is neither language, nor geography, nor religion, it is the phenomenon of Sanskriti. This Sanskriti is also uniquely different from what is otherwise known as culture; where culture could be termed as refined human existence and co-existence while Sanskriti is refined human coexistence and existence with a built-in transcendental longing.

When it is relatively simple for other societies to impart their culture to their young ones, it becomes a complex and complicated phenomenon to transmit a Sanskriti to a next generation, owing to many factors. Primarily, the complexity of such a Sanskriti itself poses one major challenge, which is actually seriously complicated through series of invasions from without and a near one thousand years of foreign and at the same time unscrupulously hostile rule.

The blatant destruction which such aliens continuously attempted on Bharatiya Sanskriti further makes this task of imparting our Sanskriti from one generation to another near impossible, and it constantly and consistently calls for autochthones to be vibrantly active in such processes. And what is more, until the Rashtriya Swayam Sevak Sangh became strong, there used to be no one to either monitor or check this malady. Nonetheless, the vestiges of such atrocities remains and that demands a continuously ongoing program as well as process of both cleaning and cleansing.

The situations in text books

Bharatiya education used to be very systematic and meticulous in ancient times. There used to be a time when Bharat had some seven thousand plus universities of small and large nature, where each university had some sort of specialisation. But during the near one thousand years of alien oppression, these got suppressed, in toto if not destroyed in toto. History tells us that Bhatiyar Khilji put fire to the university of Nalanda and the library was burning for two months. Perhaps it is impossible for one to even imagine the number of texts burned, and the amount of knowledge burned.

It is this Swabhimana that must be imparted to the next generation through schools. Therefore, the school text books must be naturally designed to create Swabhimana in the minds of all Bharatiyas in a most natural and spontaneous manner. Let us not blindly copy what people do in Europe and other places, let us give our own Sanskriti to our youngsters through our text books to begin with. Let us look at the last Sukta from the last Mandala of the Rg Veda that asks us to be together and united to remain strong and worthy of the knowledge tradition and the Sanskriti of Bhart.

When the British were trying to take things in to their hands, it was a trading East India Company that was making decisions, and eventually the British took control of everything. There used to be a Viceroy representing the queen, and officers of the British government posted in Bharat with special trainings. Many of them carried the missionary zeal with a conviction that they were civilising the world through Christianisation, in their utter ignorance of reality regarding Bharat – and other societies as well.

We do have the results of such things: there came a McCauley with the nefarious design of teaching English to Young Bharatiyas on the one hand, to translate Hindu texts in destructive manner into English from Sanskrit through the 'romantic' Max Muller, make the newly English educated helpless Bharatiya youth read them, where McCauley was confident that in 'fifty years of time, there will be no single Hindu left in Bharat'. (From his letters)

To make things worse, when the British had to quit Bharat, they cleverly handed over the governance of Bharat into their 'Bhakts'. They had already intensified the rift between Hindus and Muslims in all possible manner including the creation of Aligarh Muslim University from Mohammadan Anglo Oriental College where the British used to run things. They successfully created a Deobandh school, pampered Sayyad Ahmed Khan and eventually divided Bharat in the

Hindu Muslim line, as they have divided Bengal in the Hindu Muslim line in 1905. (One must not forget that in the very next year, in 1906, the AIML, All India Muslim League was formed in Dhaka with the ultimate objective of a Dar-Ul-Islam through the propagation of the then secret program of a two-nation theory).

Did some one wonder that how a Saudi Arabian Muslim Maulvi became the first education minister of Bharat in Jawaharlal's ministry? Did anyone know that the text books were created by the Marxism inclined scholars and European fetishised minds who considered Bharat as something suffering from obsolescence? Isn't this a reality that text books for schools and other higher education purpose were designed through an implicit program of anti-Bharat design? And, what is more, isn't all these still ongoing?

From India to Bharat

Bharat has more challenges from within than without. Our present world is more designed and controlled by corporates in an implicit manner, where other corporates do not want Bharatiya corporates to be strong, influential and controlling money. Naturally they want to be in control of things, they do not want Ambani, Adani and Tata like Bharatiyas to be powerful. The Nation has to deal with this situation, which our Nation is doing well. But if the people of Bharat are not standing together, then our Nation

builders will have to spend their time and energy in addressing all kinds of spurious programs and problems they keep creating. The happening for past many years in our Nation is very demonstrative.

Unity of Bharat shall be formidable when people of Bharat shall be Swabhimanis. Swabhimana should come from the knowledge and consciousness of what Bharat is, what Bharatiya Sanskriti is and what the Vedopanishadic knowledge tradition is and the realisation that we are fundamentally the Vedic people.

It is this Swabhimana that must be imparted to the next generation through schools. Therefore, the school text books must be naturally designed to create Swabhimana in the minds of all Bharatiyas in a most natural and spontaneous manner. Let us not blindly copy what people do in Europe and other places, let us give our own Sanskriti to our youngsters through our text books to begin with. Let us look at the last Sukta from the last Mandala of the Rg Veda that asks us to be together and united to remain strong and worthy of the knowledge tradition and the Sanskriti of Bhart. This knowledge has to go through our curriculum and text books. Look at the last Sukta of RgVeda: -

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने
विश्वान्यर्य आ।
इलस्पदे समिध्यसे
स नो वसून्या भर ॥ 10.191.01
सं गच्छध्वं सं वदध्वं
सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे
संजानाना उपासते ॥ 10.191.02
समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥
10.191.03
समानी व आकूतिः
समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो
यथा वः सुसहासति ॥ 10.191.04

I am sure that this explains everything. ❑

Bharatiya (भारतीय) Perspective in Textbooks: Insights from NEP-2020

Prof. Suneel Kumar
Department of Commerce Shaheed Bhagat Singh College University of Delhi

विद्याददातिविनियं
विनयाद्यातिपात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति
धनाद्धर्मंततः सुखम्।।

"Knowledge gives humility, from humility, one attains character; From character, one acquires wealth; from wealth, good deeds (righteousness) follow and then happiness".

Shrimad Bhagvad Gita

The National Education Policy (NEP) 2020, introduced by the Government of India, aims to bring about comprehensive reforms in the country's education system. One of the key objectives of the NEP 2020 is to promote a sense of Indianness and national identity among students. The policy emphasizes the need to integrate Indian knowledge, traditions, and values into the curriculum, textbooks and teaching methods.To introduce Indianness in textbooks, the NEP 2020 encourages the development of a curriculum that reflects India's rich cultural, scientific and historical heritage. It advocates for a multidisciplinary and holistic approach to education, enabling students to understand and appreciate the diverse aspects of Indian society. The curriculum will incorporate contributions from various regions, languages, and cultures across the country, promoting a sense of unity in diversity.

Furthermore, the NEP 2020 emphasizes the importance of using local languages and mother tongues as the medium of instruction at the primary level. By encouraging the use of regional languages, the policy aims to ensure that students have a strong foundation in their own cultural and linguistic heritage. This approach also helps in preserving and promoting regional languages and literature.The NEP 2020 also emphasizes the importance of experiential learning and critical think-

ing. It encourages the use of interactive and engaging teaching methods that enable students to develop a deeper understanding of Indian traditions, values, and contributions. Through hands-on activities, field trips, and community engagement, students will have opportunities to explore and experience Indianness first-hand.

Additionally, the NEP 2020 emphasizes the integration of technology in education. It envisions the development of digital resources and e-learning platforms that showcase India's cultural and historical heritage. This integration of technology can provide students with access to a wide range of information, including traditional knowledge systems, folk arts, and indigenous practices, fostering a deeper understanding of Indianness. Putting emphasis on the usage of regional language in the education system, former Prime Minister of India, Shri. Atal Bihari Bajpayee also stated that ''शिक्षाकामाध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। ऊँची-से-ऊँची शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए''।

The NEP does emphasize the importance of promoting a sense of pride, respect, and appreciation for India's rich cultural, historical, and philosophical heritage. It encourages the inclusion of diverse perspectives, contributions, and achievements of Indian civilization throughout history. The aim is to foster a holistic understanding of Indian culture, values, and traditions among students.

National Education Policy 2020 promotes a curriculum that incorporates Indian knowledge, customs, and values in order to instil Indianness in textbooks. The strategy seeks to foster in students a feeling of national identity and pride by highlighting the use of local languages, hands-on learning, and technology. Integrating the Indian knowledge system in the curriculum helps to create a more culturally responsive, comprehensive, and inclusive educational experience for students, while preserving and promoting India's rich intellectual and cultural heritage.

In line with the NEP's objectives, efforts may be undertaken to review and update textbooks to ensure a more inclusive representation of India's diverse heritage. This can involve highlighting important historical events, personalities, and cultural practices from different regions and communities within India. Under NEP-2020, the focus has been on Learning via 6 Pramana's which are "Pratyaksa, interpreted as perception through five senses; Anumana, which uses inferences to come to new conclusions; Upamana, which is knowing through analogy and comparison; Arthapatti, which involves knowing through circumstantial implication, Anupalabdhi, which includes perception of non-existence, Sabda, which is something an individual can only directly know a fraction of all reality". As illustrated by the Upanishads, an attempt has been made under NEP-2020 to create an educational system in India that fosters inquiry and discussions to foster critical thinking and open-mindedness. In addi-

tion, Indian history education highlights and explains key moments in the independence fight against British rule, paying particular attention to the subaltern and Gandhian movements, in order to advance social justice and national identity. To advance cultural diversity and intercultural understanding, it is important to teach the ideas of many religious and philosophical traditions, such as Buddhism, Jainism, and Vedic philosophies.

It's vital to remember that different Indian states and school boards may have varied approaches to implementing the NEP and any textbook revisions.The way the NEP recommendations are interpreted and put into practice by the appropriate educational authorities will determine the precise content and actions taken in relation to the inclusion of "Indianness" in textbooks. In order to obtain the latest knowledge on this subject, it is thus advised to examine more recent sources or official educational bodies. It is crucial to incorporate Indianness into India's new educational curriculum for a number of reasons, including

Cultural preservation:

India is renowned for its extensive cultural legacy, enduring customs, and fascinating past. The curriculum's inclusion of Indianness aids in the preservation and promotion of the nation's cultural values, customs, and languages. It encourages pupils to create a solid sense of self and take pride in their Indian ancestry.

National Integration:

With many different languages, religions, and regional identities, India is a large and varied country. The inclusion of Indianness in the curriculum encourages a common knowledge of Indian history, culture, and values, which aids in fostering national integration. It inspires children from all backgrounds to respect and value the nation's diversity.

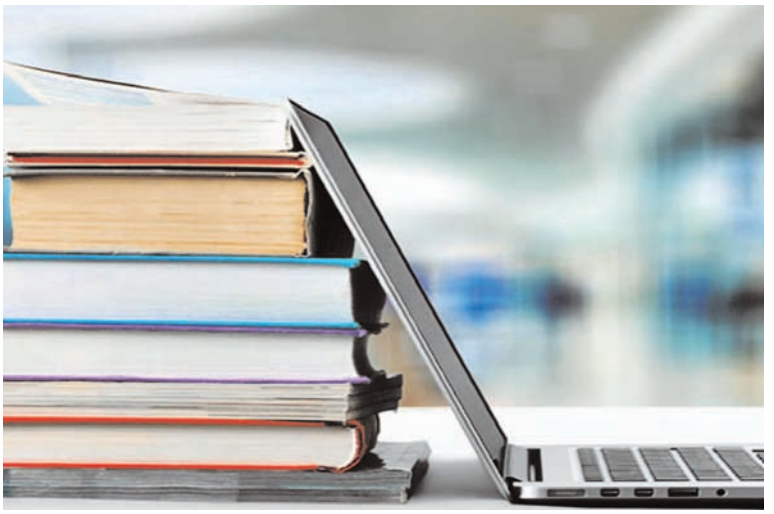

Holistic Development:

Indianness includes a wide range of elements, such as tradition, history, philosophy, literature, art, music, and dance. These components are incorporated into the curriculum to provide students with a comprehensive education that extends beyond academic knowledge.It enables children to grow into well-rounded individuals by fostering their emotional intelligence, creativity, and critical thinking.

Contextual Learning

By incorporating Indianness into the curriculum, education is made applicable and accessible to the Indian setting. It supports students' ability to apply their information successfully, comprehend their social and cultural context, and make connections between their classroom and real-world experiences. Contextual learning improves understanding and engagement, giving students a deeper sense of the purpose of their education.

Global Perspective

The curriculum should emphasize Indianness while still taking a global view.Students must be informed about foreign concerns, other cultures, and current events. Indianness and global awareness help pupils develop a more comprehensive view of the world, cultivate global citizenship, and get ready for the opportunities and challenges of a globalized world.

Sustainable Development

Important topics like sustainable development, environmental preservation, and social

responsibility may be addressed by including Indianness into the curriculum. The education system may teach students about ethical citizenship, ecological balance, and sustainable living by incorporating traditional wisdom, indigenous knowledge, and sustainable practices.

Fostering National Identity

The inclusion of Indianness in the curriculum may be extremely important in helping children develop a strong sense of national identity. It aids in their comprehension of the ideas, values, and guiding principles that underpin the Indian country. As a result, it may help residents feel more connected, united, and cohesive.

Educational value

Books are excellent educational resources that help students to gain a greater understanding of the past when they correctly portray historical events. By introducing books which reflect historical events, delivered enhanced educational value and contribute to a more accurate and comprehensive understanding of history.

Correcting biases and perspectives:

History has frequently been written from a certain viewpoint or biased point of view, which has resulted in the omission or inaccurate depiction of particular events or groups of people. Therefore, it becomes more important to rewrite books by following historical events which allows for a more inclusive and diverse representation of different perspectives, helping to correct historical biases and provide a more comprehensive understanding of the past.

Inspiring critical thinking

The main focus of newly developed curriculum is to encourage critical thinking and analysis. Readers are encouraged to query, assess, and contrast various accounts of historical events, encouraging a deeper connection with history and the growth of important analytical abilities.

Local Relevance

By incorporating the Indian knowledge system, the curriculum is guaranteed to represent the local setting and be pertinent to Indian pupils. It promotes a feeling of identification and belonging by helping students relate what they are learning to their own cultural origins, customs, and social concerns.

Global Perspective

The Indian knowledge system gives a distinct viewpoint that can help create a curriculum that is more diversified and aware of the world. In a culture that is more linked and diverse, it helps students become more open-minded and adaptive by exposing them to other ways of thinking, solving problems, and comprehending the world.

Sustainable Development

Sustainable lifestyles and ecological knowledge are frequently included into traditional Indian knowledge systems. Students may learn about sustainable development, environmental conservation, and the significance of coexisting with nature by including these topics in the curriculum.

Overall, the National Education Policy 2020 promotes a curriculum that incorporates Indian knowledge, customs, and values in order to instil Indianness in textbooks. The strategy seeks to foster in students a feeling of national identity and pride by highlighting the use of local languages, hands-on learning, and technology.Integrating the Indian knowledge system in the curriculum helps to create a more culturally responsive, comprehensive, and inclusive educational experience for students, while preserving and promoting India's rich intellectual and cultural heritage. ❑

Enriching the Essence of Indianness in Indian Textbooks

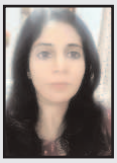

Dr. Abha Kathuria
Assistant Professor,
Department of Chemistry,
Ramjas College,
University of Delhi

A growing concern has emerged regarding the absence of Indianness in Indian textbooks, which refers to the genuine and impartial representation of Indian culture, history, heritage, and values in educational materials used across the country. This issue has sparked debates among educators, scholars, and policymakers due to the prevalent prioritization of Western or Eurocentric perspectives in Indian textbooks, overshadowing India's rich cultural and historical legacy. This biased approach restricts the understanding of Indian history, culture, and contributions, neglecting significant achievements by Indian scientists, mathematicians, and scholars. Moreover, the focus on Western literature overshadows India's own literary traditions and esteemed authors.

Furthermore, the inadequate emphasis on regional languages, folk traditions, and diverse cultural practices contributes to the erosion of Indianness in textbooks. This disregard for India's cultural diversity undermines the importance of preserving and promoting regional identities. Additionally, the inadequate representation of marginalized communities perpetuates stereotypes, reinforces social inequalities, and impedes a comprehensive understanding of Indian society. The absence of critical analysis and multiple perspectives limits students' ability to engage in critical thinking and develop a nuanced understanding of historical events and social issues, inadvertently promoting a one-sided or distorted version of Indian history and culture.

The inclusion of Indianness in textbooks plays a significant role in shaping the educational landscape of India, providing a comprehensive representation of the country's cultural, historical, and social fabric. It aims to acquaint students with their roots and heritage, fostering a profound sense of belonging and pride in their Indian identity. Such textbooks delve into the study of ancient civilizations, showcasing the magnificence of the Indus Valley Civilization, the intellectual prowess of the Vedic period, and the grandeur of the Maurya and Gupta Empires. Pivotal moments in history, including the struggle for independence and the leadership of figures like Mahatma Gandhi, Jawaharlal Nehru, and Subhash Chandra Bose, are highlighted. Furthermore, students are exposed to diverse cultural aspects such as folklore, classical dance forms, music genres, and religious practices, providing a comprehensive understanding of India's rich cultural tapestry. Textbooks also explore the historical and symbolic significance of national symbols, fostering reverence and deepening students' understanding of the nation's ethos.

India-centric textbooks celebrate the opulence of Indian literature and languages, introducing students to a wide range of regional languages and classical works. Renowned Indian authors and poets like Rabindranath Tagore, R.K. Narayan, and Kalidasa become household names, and epics such as the Ramayana and the Mahabharata transport students to an ancient world of heroic tales and moral dilemmas. By immersing themselves in India's literary heritage, students gain a profound appreciation for the power of words, diverse storytelling traditions, and the inherent wisdom contained within these timeless texts.

Textbooks should illuminate the remarkable contributions of Indian scientists and scholars throughout history. From the ancient mathematician Aryabhata to the genius of Srinivasa Ramanujan, and from the Nobel laureate C.V. Raman to the pioneering nuclear physicist Homi Bhabha, students should be exposed to India's significant advancements in mathematics, astronomy, medicine, and technology. By showcasing these scientific luminaries, textbooks inspire the next generation of Indian innovators and instil pride in the nation's intellectual achievements. Books plays a crucial role in preserving and promoting indigenous knowledge systems and traditional practices. It recognizes the wisdom embedded in traditional knowledge, such as Ayurveda, yoga, and other indigenous sciences. By incorporating these elements into the curriculum, textbooks contribute to preserving India's unique intellectual heritage.

Textbooks transcend mere academic knowledge, emphasizing the importance of social and ethical values within society. Indianness in textbooks aims to promote values such as reverence for elders, compassion, tolerance, and the spirit of unity in diversity among students. Through thought-provoking narratives and examples, textbooks cultivate an empathetic and responsible citizenry, preparing students to contribute positively to their communities and the nation at large. By emphasizing social issues, sustainable development, and the importance of responsible citizenship, textbooks encourage students to be active participants in addressing societal challenges and contributing positively to their communities and the nation.

To provide a comprehensive view of India, textbooks incorporate information about modern India. This encompasses the functioning of India's democratic system, the intricacies of governance, the country's remarkable economic development, and the pressing social challenges it faces. Students gain insights into India's space program, its vibrant cultural diversity celebrated through festivals, and its contributions to global peacekeeping efforts. By staying informed about the present, students become active participants in shaping India's future trajectory.

The National Education Policy 2020 acknowledges the need to revitalize the Indian education system by emphasizing Indian knowledge systems, languages, arts, and culture. It recognizes that curriculum and pedagogy must be redesigned to be strongly rooted in the Indian and local context and ethos, encompassing culture, traditions, heritage, customs, language, philosophy, geography, ancient and contemporary knowledge, societal and scientific needs, as well as indigenous and traditional ways of learning.

The National Education Policy 2020 acknowledges the need to revitalize the Indian education system by emphasizing Indian knowledge systems, languages, arts, and culture. It recognizes that curriculum and pedagogy must be redesigned to be strongly rooted in the Indian and local context and ethos, encompassing culture, traditions, heritage, customs, language, philosophy, geography, ancient and contemporary knowledge, societal and scientific needs, as well as indigenous and traditional ways of learning. Enriching the essence of Indianness in Indian textbooks is a continuous process that involves collaboration among educational institutions, curriculum developers, scholars, and experts from various fields. By infusing textbooks with Indianness, we can instil pride and nationalism in future generations, contributing to India's economic, social, and sporting growth. Textbooks serve as a window to a nation's hidden social and political curriculum, and changes in educational curriculum are often an attempt by the state to address challenges to its legitimacy.